

तनावरहित जीवन जीने का रहस्य

लेखक
डॉ. अशोक कुमार गदिया



देवप्रभा प्रकाशन, गाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश

ISBN : 978-93-91147-19-8



देवप्रभा प्रकाशन

फ्लैट नं. जी-50, ई-ब्लॉक,
गौड़ होम्स, गोविन्दपुरम, गाज़ियाबाद-201013 (उ.प्र.)
दूरभाष : 08586053956
e-mail: devprabhaprakashan@gmail.com
News Portal : DEVPRABHA NEWS
Youtube Channel- काव्य गंगा



मूल्य : 150.00 रुपये

प्रथम संस्करण 2021 © डॉ. अशोक कुमार गदिया

साज-सज्जा : भूदेव सिंह सैनी

आवरण : हिमांशु सैनी

Tanavrahit Jeevan Jeene ka Rahasya

by Dr. Ashok Kumar Gadiya

मुद्रण : आर.के. ऑफसेट प्रोसेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

तनावरहित जीवन जीने का रहस्य :: 3

4 :: डॉ. अशोक कुमार गदिया

लेखक का परिचय



डॉ. अशोक कुमार गदिया
बी.कॉम., एफ.सी.ए., पी.एच.डी.

डॉ. अशोक कुमार गदिया ने वाणिज्य स्नातक की परीक्षा राजस्थान विश्वविद्यालय से वर्ष 1980 में उत्तीर्ण की। नवम्बर 1988 में आपने “द इंस्टिट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउन्टेंट्स ऑफ इण्डिया” की सदस्यता प्राप्त की। वर्ष 1988 में आपने मै. अनिल अशोक एण्ड एसोसिएट्स, सी.ए. फर्म की स्थापना की, जिसके आप सक्रिय सदस्य और वरिष्ठ सहभागी हैं। आपको कराधान के क्षेत्र में 33 वर्षों का अनुभव है। इस अनुभव को आपने अपने तक ही सीमित नहीं रखा अपितु ‘कर’ विषय के जिज्ञासु छात्रों का भी पथ प्रदर्शन किया। आपको इस कार्य के लिए दिल्ली सरकार के ‘बिक्री कर’ विभाग की राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र सलाहकार समिति का सदस्य नियुक्त किया गया। कर सम्बन्धी अपने अतिविशिष्ट ज्ञान की वजह से ‘कर विभाग’ के क्षेत्र से जुड़े व्यक्तियों में आपका नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। आप पिछले 20 वर्षों से कर अधिकारियों के अनिवार्य प्रशिक्षण का कार्य भी कर रहे हैं।

तनावरहित जीवन जीने का रहस्य :: 5

डॉ. गदिया का प्रारम्भ से ही शिक्षा के क्षेत्र से अनन्य सम्बन्ध रहा है। आप इस क्षेत्र में कुछ विशेष करना चाहते हैं। अपने विद्यार्थीकाल से ही आप छात्र आन्दोलन के साथ जुड़े रहे। देशप्रेम के साथ-साथ शिक्षा प्रेम भी आपकी अन्तरात्मा में रचा-बसा है। शिक्षा को आप अमीर-गरीब प्रत्येक वर्ग में पहुँचाना चाहते हैं। अपने जीवनकाल में इस क्षेत्र की जो कमियाँ और परेशानियाँ आपको नज़र आयीं, उनके समाधान का आपने दृढ़ता के साथ व सुनियोजित ढंग से निरन्तर प्रयास शुरू किया।

आपके हृदय में पुरातन भारतीय संस्कार कूट-कूटकर भरे हैं। आपके तरल-सरल हृदय में भारतीय संस्कारों की पुण्यगंगा अविरल बहती है। इसी भावधारा से ओत-प्रोत आपका हृदय भारत की हर पीढ़ी में उसी संस्कार के दर्शन करना चाहता है, ताकि सुनहरा एवं व्यवस्थित भारत बने। भारत की भावी पीढ़ी विद्वता के साथ-साथ संस्कारवान बने, इसीलिये आपने शिक्षा ग्रहण करने के लिये नये संस्थान स्थापित करना प्रारम्भ किया ताकि सभी युवाओं को शिक्षा के समान अवसर प्राप्त हों। आपका उद्देश्य है कि शिक्षा संस्थानों में अध्यात्म विद्या की नींव पर भारतीय शिष्टता के संस्कार, देशप्रेम, लोकसेवा, संसार के पुरातन और नूतन शास्त्र, ज्ञान-विज्ञान व शिल्पकला आदि विभिन्न विषयों की वृद्धि हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप दृढ़ता के साथ निरन्तर गतिमान हैं। वर्तमान में आप भारत के विभिन्न संस्थानों के महत्वपूर्ण पदों पर आसीन हैं। संस्थान एवं समाज की प्रगति में आप अति महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। आपका मानना है कि देश में सामाजिक परिवर्तन एवं उत्थान तभी संभव होगा जब युवा पीढ़ी जागरूक होगी और उसकी सोच में आमूल-चूल परिवर्तन होगा। आप विद्यार्थियों में देशभक्ति की भावना के साथ-साथ भारत की शिष्टता, संस्कृति, सभ्यता तथा मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध हैं। आप प्रत्येक युवा के मानस पटल पर भारतीय संस्कारों की अमिट छाप को अंकित कर देना चाहते हैं। आपके जीवन का परम लक्ष्य है कि आप युवा पीढ़ी के साथ रहकर ही कार्य करते रहें। अभी वर्तमान में आपके सभी संस्थानों में लगभग 11000 विद्यार्थी उच्च शिक्षा में अध्ययनरत हैं इनमें सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि इन 11000 बच्चों में 75 प्रतिशत बच्चे SC/ST/OBC/Minority समुदाय से ताल्लुक रखते हैं इस 75 प्रतिशत में से 90 प्रतिशत बच्चे सुदूर गाँवों एवं गरीब घरों से आते हैं। भारत के 29 राज्यों से और 20 देशों से बच्चे पढ़ने आते हैं। यह दायरा अब बढ़ता ही जा रहा है। मेवाड़ विश्वविद्यालय सही

6 :: डॉ. अशोक कुमार गदिया

मायने में विश्वविद्यालय बनता जा रहा है। जहाँ देश एवं विश्व के कोने-कोने से बच्चे उच्च शिक्षा प्राप्त करने आ रहे हैं। अशोक जी का यह मिशन है कि गरीब से गरीब घरों और गाँव का बच्चा अपने विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर एक जिम्मेदार नागरिक बनकर देश की सेवा के लिये समाज जीवन में प्रवेश करे। वह चाहते हैं कि हमारा बच्चा आत्मविश्वास से भरा हुआ हो जो देशभक्त हो, समाज के प्रति संवेदनशील हो, जिसके मन में हमारे राष्ट्रीय महापुरुषों का अभिमान हो तथा उसकी धमनियों में राष्ट्रीय महापुरुषों का रक्त प्रवाहित हो रहा हो। ऐसी उदात्त भावना के साथ एक सशक्त नौजवान तैयार हो। इस पुनीत कार्य में वह रात-दिन लगे हुए हैं। यहाँ पर जम्मू-कश्मीर, बिहार, नागालैण्ड, मणिपुर, झारखण्ड, छत्तीसगढ़ का जिक्र करना समीचीन होगा। आप स्वयं वहाँ जाकर गरीब से गरीब घरों से हज़ारों की संख्या में बच्चे लाकर उनको पढ़ा-लिखाकर प्रशिक्षण देकर उनकी नौकरी लगवा कर राष्ट्र की मुख्यधारा में ला चुके हैं। उनका कथन है कि जहाँ कोई नहीं पहुँचता वहाँ अपने को पहुँचकर (Reach to Unreached) गरीब बच्चों को लाना पढ़ाना-लिखाना, भारतीय संस्कार देना और नौकरी दिलवाकर राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ना है। इसके लिये चाहे कितना भी संघर्ष क्यों न करना पड़े लेकिन राष्ट्रीय कार्य हर हाल में करेंगे।

प्रभु आपको असीम भाक्ति, अदम्य साहस, पराक्रम और अतुलित बल प्रदान करे।

आप जिन विभिन्न संस्थानों के पदेन अध्यक्ष एवं सदस्य हैं, इनके नाम इस प्रकार हैं-

- | | |
|--|--------------|
| (1) मेवाड़ विश्वविद्यालय, चित्तौड़गढ़, राजस्थान | कुलाधिपति |
| (2) मेवाड़ इंस्टिट्यूट ऑफ मैनेजमेन्ट सेक्टर-4सी, वसुन्धरा, गाजियाबाद (उ.प्र.) | अध्यक्ष |
| (3) मेवाड़ लॉ इंस्टिट्यूट सेक्टर-4सी, वसुन्धरा, गाजियाबाद (उ.प्र.) | अध्यक्ष |
| (4) मेवाड़ गर्ल्स कॉलेज गांधीनगर, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान) | संयुक्त सचिव |
| (5) मेवाड़ गर्ल्स औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र गांधीनगर, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान) | संयुक्त सचिव |
| (6) मेवाड़ गर्ल्स कॉलेज ऑफ टीचर्स ट्रेनिंग गांधीनगर, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान) | संयुक्त सचिव |

तनावरहित जीवन जीने का रहस्य :: 7

| | |
|--|----------------|
| (7) मेवाड़ गर्ल्स आयुर्वेद नर्सिंग सेन्टर गांधीनगर, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान) | संयुक्त सचिव |
| (8) मेवाड़ गर्ल्स एलोपैथिक नर्सिंग सेन्टर गांधीनगर, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान) | संयुक्त सचिव |
| (9) एकात्म मानव दर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान, नई दिल्ली | उपाध्यक्ष |
| (10) भारतीय शिक्षण मण्डल मेरठ प्रान्त | अध्यक्ष |
| (11) अनिल अशोक एण्ड एसोसिएट चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट नई दिल्ली, मुम्बई एवं हरिद्वार | वरिष्ठ पार्टनर |

प्रकाशित कृतियाँ-

| | |
|---|------|
| 1. बस अब बहुत हो चुका (प्रथम संस्करण) | 2015 |
| 2. मेरी क्रान्तिकारी योजना (प्रथम संस्करण) | 2015 |
| 3. सफलता के रहस्य (प्रथम संस्करण) | 2016 |
| 4. सफलता के रहस्य (द्वितीय संस्करण) | 2017 |
| 5. वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप (प्रथम संस्करण) | 2018 |
| 6. मेवाड़-मार्ग-निर्देशिका (प्रथम संस्करण) | 2019 |
| 7. भोर की रश्मियाँ (प्रथम संस्करण) (कविता संग्रह) | 2019 |
| 8. जीएसटी (गुड्स एण्ड सर्विसेस टैक्स) नामक पुस्तक के सह-लेखक (प्रथम संस्करण) | 2020 |
| 9. दिल्ली मूल्य वर्द्धित कर अधिनियम, 2005 (वैट) प्रथम संस्करण | |
| 10. विभिन्न शोध पत्र देश-विदेश की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित | |

सम्मान:-

1. भारत के राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति स्काउट्स अवार्ड से सम्मानित-1974
2. गाज़ियाबाद में सिविल सोसाइटी द्वारा नगर गौरव सम्मान-2008
3. सेंटर फॉर एजुकेशन ग्रोथ एण्ड रिसर्च नई दिल्ली द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा गौरव सम्मान-2018
4. उत्तर प्रदेश की माननीय राज्यपाल श्रीमती आनंदीबेन पटेल द्वारा दिव्य भारत सप्तंग भूषण सम्मान-2019
5. अखिल भारतीय प्रधान संगठन, अलीगढ़ द्वारा भारत गौरव सम्मान-2020

(परिचयकर्ता- चेतन आनन्द)

8 :: डॉ. अशोक कुमार गदिया

आत्मकथन

जून 2021 में अचानक मेरी आँखों में रौशनी कम होने लगी। जून के अंतिम सप्ताह में मुझे लिखने-पढ़ने में समस्या आने लगी। कोरोनाकाल चल रहा था। इसीलिए डॉक्टर को दिखा नहीं पा रहा था। 30 जून को डॉक्टर को दिखाया तो उन्होंने कहा कि दोनों आँखों में मोतियाबिंद काफी बढ़ गया है। इसका ऑपरेशन कराना होगा। आगे की जाँच में यह पता लगा कि बाँयी आँख के रेटिना में एक छेद हो गया है। इसकी वजह से बाँयी आँख में विजन लगभग शून्य हो गया है। एक जुलाई को डॉक्टर की सलाह पर बाँयी आँख के मोतियाबिंद का ऑपरेशन हुआ और दो जुलाई को रेटिना का ऑपरेशन कर उस छेद को बंद करने का प्रयास किया गया। एक हफ्ते तक के लिए हिदायत थी कि सिर्फ उल्टा लेटना है। कोई पढ़ाई-लिखाई नहीं, कोई फोन पर बात नहीं, कोई टीवी नहीं। सिर्फ उल्टे लेटकर आराम करना है।

एक हफ्ते बाद जाँच हुई। पता चला कि सब ठीक चल रहा है, पर डॉक्टर ने कहा कि आप एक हफ्ता और विश्राम कीजिये। अगले हफ्ते फिर जाँच हुई तो पता लगा कि वह छेद फिर खुल गया है। डॉक्टर और घर-परिवार के सभी सदस्य इस घटना से विस्मित हुए और दुखी भी। चिन्ता स्वाभाविक भी थी। परन्तु मैं अपना संयम रखे हुए था। मैंने डॉक्टर से कहा कि आप एक बार पुनः रेटिना के ऑपरेशन की तैयारी कीजिये। तब तक मैं दूसरी यानी दाँयी आँख के मोतियाबिंद का ऑपरेशन करवा लेता हूँ। दूसरी आँख के मोतियाबिंद का ऑपरेशन हुआ और एक हफ्ते बाद मैंने पुनः बाँयी आँख के रेटिना का ऑपरेशन भी कराया। डॉक्टर मेरी हिम्मत की दाद दे रहा था। पर, साथ में उसने हिदायत भी दी कि आपको दो महीने घर से बाहर नहीं निकलना है। सिर्फ विश्राम ही करना है। पढ़ना-लिखना भी नहीं है, मोबाइल नहीं चलाना और टीवी भी नहीं देखना है। जितना हो सके उल्टा लेटना है। मेरे लिए यह काफ़ी मुश्किल कार्य था। क्योंकि जो व्यक्ति दिन में 15-16 घंटे लिखने-पढ़ने का काम करता हो और आवश्यक कार्यवश घूमता रहता हो, उसका लिखना-पढ़ना और घूमना रोक दिया जाए तो कितना

मुश्किल होता होगा, इसे मेरे करीबी मित्र और सहयोगी मुझसे ज़्यादा अच्छी तरह समझ सकते हैं। घर में पत्नी का अनुशासन एवं बच्चों का आदेशात्मक आग्रह मुझे आतंकित किए रहता था। इस विश्राम की परिस्थिति में मैंने सोचा अब क्या किया जाए? मुझे अचानक याद आया कि मेरे षष्ठीपूर्ति कार्यक्रम में कई उपहार मिले थे, उसमें एक उपहार श्रीमद् भगवद्गीता की एक ऑडियो सीडी भी थी। मैंने उसको मँगवाया और तय किया कि इसे सुना जाए। मैंने लगभग सौ बार गीता के इस ऑडियो को सुना। गीता के इस ऑडियो ने मेरे ज्ञानचक्षु खोल दिये। मुझे ऐसा लगा कि अबतक गीता को हमने आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ही देखा और सुना है। परन्तु इस ऑडियो को सौ बार सुनने के बाद मैंने उल्टा लेटकर आत्ममंथन करते हुए यह पाया कि भगवान श्रीकृष्ण के उपदेश हमारे वर्तमान जीवन को कितना सरल, सहज एवं सौम्य बना सकते हैं। यदि हम उनके उपदेशों को आज के परिप्रेक्ष्य में दैनिक जीवन में लागू करें तो पाएंगे कि जीवन को जीने की उत्कृष्ट कला हममें स्वाभाविक रूप से समावेशित हो जाएगी। यह पुस्तक मेरा एक विनम्र प्रयास है, जिसको मैंने स्वयं के लिए लिखा है। कवि एवं पत्रकार श्री चेतन आनंद के आग्रह पर मैं इसको प्रकाशित करवा रहा हूँ। अन्यथा यह पुस्तक मेरे लिए एक मार्ग निर्देशिका है। मुझे उम्मीद है कि आप इसे पढ़कर इसे अपने जीवन की मार्ग निर्देशिका अवश्य बनाएंगे। मैं इस अवसर पर अपनी पत्नी आशा, पुत्रवधु अनोखी एवं दोनों पुत्रों अर्पित व अमित का आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे इस पुस्तक को लिखने का मौका दिया। मेरा यथासम्भव सहयोग किया। मै. शेमारो कम्पनी जिसने श्रीमद् भगवद्गीता का आडियो बनाया तथा हम तक उपलब्ध करवाया, उस कम्पनी एवं उन कलाकारों का जिन्होंने श्रीमद् भगवद्गीता का वाचन किया उनका भी हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। उनका वाचन सुनकर ही मैं यह पुस्तक लिख पाया।

धन्यवाद सहित

आपका

-डॉ. अशोक कुमार गदिया

अनुक्रम

| | |
|--------------------|----|
| 1. तनाव प्रबंधन | 13 |
| 2. क्रोध प्रबंधन | 21 |
| 3. नेतृत्व | 35 |
| 4. ध्यान योग | 45 |
| 5. श्रद्धा | 56 |
| 6. एकता | 61 |
| 7. प्रेम वचन | 69 |
| 8. खुशी | 76 |
| 9. इच्छा | 82 |
| 10. सीखने का रवैया | 91 |

“लालसाहीन विचार, अलिप्तता, इच्छा विहीनता मनुष्य को शान्ति, स्पष्टता, तीक्ष्ण बुद्धि, विवेकपूर्णता, खुशी और आनंद की तरफ ले जाते हैं। किसी व्यक्ति या वस्तु के लिए पसंद या नापसंद की इच्छा जब आप छोड़ देते हैं, आप उनसे अलिप्त होकर परस्पर बातचीत कर सकते हैं। आप किसी भी पसंद या नापसन्द के प्रति तटस्थ हो सकते हैं। आपकी इच्छाएँ कम होने लगेंगी और क्रोध की जगह शांति और प्रेम आ जाएगा। लालसा को त्यागें और खुशी की ओर चलें।”

-डॉ. अशोक कुमार गदिया

पाठ-1

संकट और तनाव

(अध्याय-1, श्लोक 28, 29, 30)

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्॥1.28॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते॥1.29॥
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः॥1.30॥

अर्थः—अर्जुन बोले—हे कृष्ण! यहाँ मैं युद्ध के अभिलाषी स्वजनों को ही देखता हूँ। मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं, मुख सूख रहा है और मेरा शरीर काँप रहा है और रोएँ खड़े हो रहे हैं। मेरे हाथ से गांडीव धनुष गिर रहा है और मेरी त्वचा जल रही है। मैं खड़ा रहने में भी असमर्थ हो रहा हूँ, मेरा मन भ्रमित—सा हो रहा है।

भावार्थः—जब निकट के प्रियजन कठिनाई में, भय में, आफत में या संकट में होते हैं तब उनके लिए आपके अंदर करुणा, दया, सहानुभूति की भावना पैदा होती है। आप उनके संकट और दुख का अनुभव करते हैं और ऐसा होना स्वाभाविक भी है। अगर आप उनकी सहायता करने की स्थिति में हैं तो अपनी सामर्थ्य के अनुसार ज़रूर मदद कीजिये। यदि आप मदद करने की स्थिति में नहीं हैं तब आप शरीर से कमजोर भावनात्मक रूप से परेशान और बौद्धिक स्तर पर दिशाशून्य हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में आप गहन तनाव में होते हैं। तब आपके किसी निकट के समझदार मित्र, शिक्षक, संबंधी या बुद्धिमान व्यक्ति से अपनी चिंताओं को साझा कीजिए। आपको उचित सलाह और उपाय मिलते हैं। जिससे आपकी मुश्किल स्थिति की वास्तविकता और इससे बाहर निकलने का संभव मार्ग ज़रूर मिलेगा एवं आपका तनाव निश्चित रूप से कम होगा।

□

पाठ-1.1
तनाव में हार मानना
(अध्याय-1, श्लोक 32, 33, 34)

न कङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा॥1.32॥
येषामर्थे काङ्क्षतं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च॥1.33॥
आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा॥1.34॥

अर्थ:-हे कृष्ण, मैं विजय, राज्य या सुख की कामना नहीं करता। किस लाभ का एक राज्य, सुख या यहाँ तक कि जीवन ही होगा। जिनके लिये हमारी राज्य? भोग और सुख की इच्छा है? वे ही ये सब अपने प्राणों की और धन की आशा का त्याग करके युद्ध में खड़े हैं। आचार्य, पिता, पुत्र और उसी प्रकार पितामह, मामा, ससुर, पौत्र, साले तथा अन्य जितने भी सम्बन्धी हैं, मुझ पर प्रहार करने पर भी मैं इनको मारना नहीं चाहता, और हे मधुसूदन मुझे त्रिलोकी का राज्य मिलता हो, तो भी मैं इनको मारना नहीं चाहता, फिर पृथ्वी के लिये तो मैं इनको मारूँ ही क्या।

भावार्थ:-अक्सर जब आप तीव्र तनाव में होते हैं। आप अपने सब लाभ, सुख, समृद्धि, सहूलियत, आराम और आनंद में से रुचि गायब हो जाती है। आप सब कुछ खोने के लिए तैयार हो जाते हैं और हार मान लेते हैं। हार मानने से क्या स्थिति में सुधार होगा और क्या आपका तनाव कम होगा? यह आपको अपने सलाहकारों की मदद से पूछना चाहिए। आपको समझना चाहिए कि समस्या के मूल कारण को सुलझाने के लिए परिस्थिति का सामना करना और सोचना बेहतर है। समस्या से पीछे हटना उपाय नहीं सामना करके अपने आपको सँभालकर स्थिति के ऊपर जीत पाने में ही सच्ची समझदारी और समाधान है।

14 :: डॉ. अशोक कुमार गदिया

पाठ-1.2
अपराध, भाव और तनाव
(अध्याय-1, श्लोक 44, 46, 47)

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम॥1.44॥
यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥1.46॥
सञ्जय उवाच
एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः॥1.47॥

अर्थः—हे जनार्दन, जिनके कुल धर्म नष्ट हो जाते हैं, उन मनुष्यों का बहुत काल तक नरकों में वास होता है, ऐसा हम सुनते आये हैं। अगर ये हाथों में शस्त्र—अस्त्र लिये हुए धृतराष्ट्र के पक्षपाती लोग युद्धभूमि में सामना न करने वाले तथा शस्त्ररहित मेरे को मार भी दें, तो वह मेरे लिये बड़ा ही हितकारक होगा। संजय ने कहा रणभूमि (संख्ये) में शोक से उद्विग्न मनवाला अर्जुन इस प्रकार कहकर बाण सहित धनुष को त्यागकर रथ के पिछले भाग में आसन बैठ गया।

भावार्थः—जब अपने निकट के स्वजन गहन समस्याओं में उलझे हुए हैं। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आप उसमें शामिल हैं तो आपको ऐसा लगना स्वाभाविक है कि ये समस्याएँ आपकी वजह से हैं और आप अपने आपको दोषी मानने लगते हैं। तब सबकुछ छोड़ देने या जीवन त्याग करना ही आखिरी उपाय है। ऐसा आप सोचने लगते हैं। ऐसी स्थिति में सब कुछ छोड़ देना या आत्महत्या कर लेना उपाय नहीं है। विचारशील और अभिनव उपाय ढूँढने के लिए डटे रहना, गहन चिंतन करना और अंदर की स्थिरता और सामर्थ्य को पुनः प्राप्त करना ही उचित मार्ग है। जब आप खड़े होते हैं तो पूरा जगत आपके साथ खड़ा हो जाता है। आप हार चुके हो, खुद असहाय हो,

तनावरहित जीवन जीने का रहस्य :: 15

यह समस्या नहीं है। वास्तविक समस्या यह है कि आप खुद को हारे हुए और असहाय समझने लगते हैं। आंतरिक स्पष्टता व किसी ज्ञानपूर्ण व्यक्ति के बाह्य आधार से आप पार निकलेंगे, ऐसा मानने से आप वास्तविकता में पार हो जाते हैं। सोचिए आप कर सकते हैं और आप ज़रूर करेंगे एवं कामयाब होंगे।



पाठ-1.3
तनाव और वर्तमान वास्तविकता
(अध्याय-2, श्लोक 11)

श्री भगवानुवाच
अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥2.11॥

अर्थ:-श्री भगवान् बोले, तुमने शोक न करने योग्य का शोक किया है और पण्डिताई की बातें कह रहे हो परन्तु जिनके प्राण चले गये हैं उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिये पण्डित लोग शोक नहीं करते।

भावार्थ:-जब आप जो हुआ उसके लिए या जो नहीं हुआ है उसके लिए वह क्यों हुआ है और वह क्यों नहीं हुआ, उसके लिए चिंता करते हैं तो आपके मन में अति तनाव का निर्माण होता है और कुछ होने या कुछ नहीं होने की वजह से ऐसा हुआ। ऐसे भ्रामक तत्वों के साथ तनाव गहरा हो जाता है। जो कुछ हुआ है या जो कुछ नहीं हुआ है, उस वास्तविकता को स्वीकार करते हुए अब क्या करना है, उसके बारे में सोचने से सही उपाय मिलता है। विशादपूर्ण भूत की चिंता न करें। भावी आशंका की भी चिंता न करें। अब इस वक्त क्या करना है, यह सोचिये, आपको समाधान दिखाई देगा। भूतकाल से सीखने से वर्तमान में योगदान से भावी के लिए सुधार करना ही उपयुक्त मार्ग है।

□

पाठ-1.4
तनाव और चंचल मन
(अध्याय-6, श्लोक 33)

अर्जुन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम्॥6.33॥

अर्थः—अर्जुन बोले, हे मधुसूदन आपने समतापूर्वक जो यह योग कहा है मन की चञ्चलता के कारण मैं इस योग की स्थिर स्थिति नहीं देखता हूँ।

भावार्थः—जब आप कोई महत्वपूर्ण विषय चुनौती या संकट के बारे में सोचते हैं, आपका मन भटक जाता है। आप विचलित हो सकते हैं और आपको खुद में और अपनी क्षमता पर संशय होने लगता है। मन निर्बल होने लगता है। आप स्थिरता गँवा सकते हैं। मन स्वभाव से ही वायु की तरह बड़ी ही ताकत से इधर—उधर दौड़ता रहता है। मन का तरंग भाव व्यक्ति को कमजोर और अस्थिर बना देता है। जैसे सशक्त और प्रबल पवन को पर्वत से रोका जा सकता है, वह स्थिर किया जा सकता है। मनुष्य के चंचल मन को बौद्धिक चिंतन, विश्लेषण और तर्क को पूरी तरह से लगाकर स्थिर किया जा सकता है। अपनी बुद्धि को पर्वत की तरह अटल करें। अपने चंचल मन को स्थिर करें। इस तरह के भावनात्मक तनाव को पार करने का उपाय बौद्धिक चिंतन ही है।

□

पाठ-1.5

तनाव और भय

(अध्याय-11, श्लोक 23, 24, 25)

| | | |
|-----------------|------------------|----------------------------|
| रूपं | महत्ते | बहुवक्त्रनेत्रं, |
| महाबाहो | | बहुबाहूरुपादम्। |
| बहूदरं | बहुदंष्ट्राकरालं | दृष्ट्वा, |
| लोकाः | | प्रव्यथितास्तथाऽहम्॥11.23॥ |
| नभःस्पृशं | | दीप्तमनेकवर्णं, |
| व्यात्ताननं | | दीप्तविशालनेत्रम्। |
| दृष्ट्वा | हि त्वां | प्रव्यथितान्तरात्मा, |
| धृतिं | न विन्दामि | शमं च विष्णो॥11.24॥ |
| दंष्ट्राकरालानि | च | ते मुखानि, |
| दृष्ट्वैव | | कालानलसन्निभानि। |
| दिशो | न जाने न | लभे च शर्म, |
| प्रसीद | देवेश | जगन्निवास॥11.25॥ |

अर्थः—हे महाबाहो, आपके बहुत मुखों और नेत्रों वाले, बहुत भुजाओं, जंघाओं और चरणों वाले, बहुत उदरों वाले, बहुत विकराल दाढ़ों वाले महान् रूप को देखकर सब प्राणी व्यथित हो रहे हैं तथा मैं भी व्यथित हो रहा हूँ। हे विष्णो, आपके अनेक दैदीप्यमान वर्ण हैं, आप आकाश को स्पर्श कर रहे हैं, आपका मुख फैला हुआ है, आपके नेत्र प्रदीप्त और विशाल हैं। ऐसे आपको देखकर भयभीत अन्तःकरण वाला मैं धैर्य और शान्ति को भी प्राप्त नहीं हो रहा हूँ। आपके प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रज्वलित और दाढ़ों के कारण विकराल (भयानक) मुखों को देखकर मुझे न तो दिशाओं का ज्ञान हो रहा है और न शान्ति ही मिल रही है। इसलिये हे देवेश, हे जगन्निवास आप प्रसन्न होइये।

तनावरहित जीवने का रहस्य :: 19

भावार्थ:—जब संकट की स्थिति, चुनौती का खतरा आशंका व भय अपने कई डरावने पहलू एवं संभावनाएँ आपके सामने खड़ी दिखती हैं। आपको कँपकँपी और सिहरन महसूस होने लगती है। आप भयग्रस्त हो जाते हैं और सोचने की दिशा भूल जाते हैं और खुद को शक्तिहीन महसूस करने लगते हैं। तब तनावग्रस्त स्थिति में चंद मिनटों के लिए आँख बंद करें, ध्यान व प्रार्थना करते हुए खुद को स्थिर करें, ध्यान से आपको शांति मिलेगी और प्रार्थना हिम्मत प्रदान करेगी। मन की ऐसी उन्नत अवस्था में आप स्पष्टता से सोच सकते हैं और उपाय पा सकते हैं। बाद में इस भयानक परिस्थिति में उस समय आपके करीब जो कोई है उनसे, माता—पिता से, जीवनसाथी से, नजदीकी मित्र से, डॉक्टर या गुरु से मदद माँगने में हिचकिचाएँ नहीं। अपने भय के बारे में उनसे बात कीजिए। ऐसे परामर्श से आपके भय पिघल जाएंगे। परामर्श एवं प्रार्थनायोग्य विचारों से आपमें साहस का संचार होगा और आप भयमुक्त बनेंगे। हकीकत में जब आप शांति से सोचते हैं, तब आपको पता चलता है कि भय केवल काल्पनिक था और ऐसी निर्बलता प्रमाणिक नहीं थी। वास्तव में भयजनक और डरावनी परिस्थितियों से भागे नहीं या पीछे हटे नहीं। बल्कि साहसपूर्वक एक कदम आगे बढ़ाइये। आगे की ओर एक कदम उठाने से आप खुद को आत्मविश्वासी और साहसी महसूस करेंगे। उसी परिस्थिति में बदलाव लाने में सहायता मिलेगी और आपका डर भी चला जायेगा। सोचिये और एक कदम आगे बढ़ाइये। आप खुद को तनावरहित पाएंगे और प्रगति करेंगे।

□

क्रोध प्रबंधन

पाठ-2

क्रोध पतन की सीढ़ी

(अध्याय-2, श्लोक 62, 63)

| | | |
|----------------|--------------|-----------------------------|
| ध्यायतो | विषयान्युंसः | सङ्गस्तेषूपजायते। |
| सङ्गात्संजायते | कामः | कामात्क्रोधोऽभिजायते॥2.62॥ |
| क्रोधाद्भवति | सम्मोहः | सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः। |
| स्मृतिभ्रंशाद् | बुद्धिनाशो | बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥2.63॥ |

अर्थः—विषयों का चिन्तन करने वाले मनुष्य की उन विषयों में आसक्ति पैदा हो जाती है। आसक्ति से कामना पैदा होती है। कामना से क्रोध पैदा होता है। क्रोध होने पर सम्मोह (मूढ़भाव) हो जाता है। सम्मोह से स्मृति भ्रष्ट हो जाती है। स्मृति भ्रष्ट होने पर बुद्धि का नाश हो जाता है। बुद्धि का नाश होने पर मनुष्य का पतन हो जाता है। क्रोध से उत्पन्न होता है मोह और मोह से स्मृति विभ्रम। स्मृति के भ्रमित होने पर बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि के नाश होने से वह मनुष्य नष्ट हो जाता है।

भावार्थः—उपभोग के विचार से, संसर्ग से, इच्छा से, क्रोध से, ग़लतफहमी से, स्मृति भ्रम से, विचारशून्यता से, आपके अन्दर मनुष्यत्व का पतन होता है। जब आपका किसी व्यक्ति या वस्तु से लगाव हो जाता है तो उसे पाने की इच्छा आपके अंदर पैदा होती है। जब चाहा हुआ नहीं प्राप्त होता है तो चिड़चिड़ाहट व क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध अतिप्रबल नकारात्मक ऊर्जा है। उससे ग़लत मान्यताएँ दिमाग में आती हैं। क्रोध के प्रवेश के साथ ही अस्थायी स्मृति का लोप होता है। इसी अवस्था में खुद के लिए और औरों के लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा है, वो आप भूल जाते हैं, आप भूल जाते हैं कि जिसके ऊपर आपने गुस्सा किया, वह आपका सबसे प्रिय व्यक्ति है, जब आपको अत्यधिक सहायता की आवश्यकता थी तब उसने मदद की थी, क्रोधित अवस्था में बुद्धि, तर्क और विवेक मन्द हो जाते हैं और विचारधारा का असर ख़त्म हो जाता है। क्रोध का विसर्जन करें और पतन से बचते रहें।

□

तनावरहित जीवने का रहस्य :: 21

पाठ-2.1
अक्रोध से खुशी की ओर उत्थान की सीढ़ी
(अध्याय-2, श्लोक 66)

**नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥2.66॥**

अर्थः—जिसके मन—इन्द्रियाँ संयमित नहीं हैं, ऐसे मनुष्य की व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं होती। व्यवसायात्मिका बुद्धि न होने से उसमें कर्तव्य परायणता की भावना नहीं होती। ऐसी भावना न होने से उसको शान्ति नहीं मिलती। फिर शान्तिरहित मनुष्य को सुख कैसे मिल सकता है।

भावार्थः—लालसाहीन विचार, अलिप्तता, इच्छा विहीनता मनुष्य को शान्ति, स्पष्टता, तीक्ष्ण बुद्धि, विवेकपूर्णता, खुशी और आनंद की तरफ ले जाते हैं। किसी व्यक्ति या वस्तु के लिए पसंद या नापसंद की इच्छा जब आप छोड़ देते हैं, आप उनसे अलिप्त होकर परस्पर बातचीत कर सकते हैं। आप किसी भी पसंद या नापसन्द के प्रति तटस्थ हो सकते हैं। आपकी इच्छाएँ कम होने लगेंगी और क्रोध की जगह शांति और प्रेम आ जाएगा। लालसा को त्यागें और खुशी की ओर चलें।

□

पाठ-2.2
क्रोध और कामना
(अध्याय-2, श्लोक 37)

**हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥2.37॥**

अर्थ:—युद्ध में मरकर तुम स्वर्ग प्राप्त करोगे या जीतकर पृथ्वी को भोगोगे इसलिये, हे कौन्तेय, युद्ध का निश्चय कर तुम खड़े हो जाओ।

भावार्थ:—क्रोध, कामना और इच्छाएँ मनुष्य के सबसे बड़े शत्रु हैं। ये व्यक्ति से अनायास नकारात्मक, आक्रामक और नापाक क्रियाएँ बलपूर्वक करवाते हैं। वास्तव में ऐसा करने की व्यक्ति की चाहत नहीं होती। क्रोध चित्त को दूषित करता है और विध्वंसक कार्य करने के लिए उत्तेजित करता है। इच्छा निवेश है और क्रोध उसका ब्याज, जब आप इच्छा का त्याग करते हैं तो गुस्सा शांत हो जाता है और तृष्णा जिसकी आप इच्छा करते हैं, उसके विरुद्ध जो सचमुच में आवश्यक है, उसी में मर्यादित रहने से इच्छाएँ निष्कासित की जा सकती हैं। कामना—इच्छा का त्याग करें और क्रोध से मुक्ति पाएँ।

□

पाठ-2.3
नर्क के तीन द्वार
(अध्याय-16, श्लोक 21)

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥16.21॥

अर्थः—काम, क्रोध और लोभ—ये तीन प्रकार के नरक के दरवाजे जीवात्मा का पतन करने वाले हैं, इसलिये इन तीनों का त्याग कर देना चाहिये।

भावार्थः—कामना, क्रोध व लोभ नर्क के तीन दरवाजे हैं। कामना—लालसा नर्क में पतन कराते हैं। क्रोध जलाता है और जीवन को लाल तप्त नर्क बनाता है। लोभ—स्वार्थ के भँवर के नर्क में जीवन सत्व को डुबोता है। जीवन के सत्व के विनाश के लिए तीन मार्ग हैं। तीनों मार्गों को छोड़ने से ये जीवन इस जगत में ही स्वर्ग बनता है। कामनाओं की अनुपस्थिति में आप सन्तुष्टि से स्वर्ग में जाते हैं। क्रोध की अनुपस्थिति में आप प्रेम—माधुर्य के स्वर्ग में प्रगति करते हैं। लोभ की अनुपस्थिति में आप खुशी के स्वर्ग के किनारे पहुँचते हैं। इसलिए नर्क के इन तीन द्वारों में प्रवेश नहीं करने से आप सन्तुष्टि, प्रेम और खुशी के मार्ग पर आगे बढ़ सकते हैं। नर्क के तीन द्वार—कामेच्छा, क्रोध व लोभ के बिना जीवन स्वर्ग है।

□

पाठ-3.1
कर्मशीलता
(अध्याय-2, श्लोक 47)

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥2.47॥**

अर्थ:-कर्तव्य कर्म करने में ही तेरा अधिकार है, फलों में कभी नहीं। अतः तू कर्मफल का हेतु भी मत बन और तेरी अकर्मण्यता में भी आसक्ति न हो।

भावार्थ:-कार्य स्वयं को आधार प्रदान करने व उत्कृष्टता के प्रति विकास का साधन है। कार्यमूल्य वृद्धि करता है। कार्य, कार्य करने वाले की क्षमता का प्रतिनिधित्व है। कार्य करने वाले को जिम्मेदारी के साथ कार्य करना चाहिए। जिससे अपनी सभी क्षमता और निपुणता को योगदान में परिवर्तित कर सकें। व्यक्ति को सार्थक कार्य करना चाहिए और योगदान देना चाहिए। कर्म-फल के लिए अति आतुर होने से कार्य करने वाला ग़लत तरीके से जल्दबाज़ी से कार्य पूरा करने में लग जाता है और कर्म का महत्व भूल जाता है। इसलिए अपने कार्य के फल में उत्सुक मत रहें। कार्य करने से जो आपको मिलता है वह कृपा है। कार्य के मूल्यांकन को मूल्यांकनकारों के ऊपर छोड़ दीजिए। कर्म फल की माँग करने का मतलब है कि अच्छे कार्य का फल पूरा खुद ही लेना। दूसरों के सहकार, परिस्थिति, संसाधन, पर्यावरण, प्रकृति और प्रभु कृपा के बिना कोई अकेला कुछ नहीं कर सकता। इसलिए कार्य के फल का वितरण करना चाहिए। कार्य के लाभ को अकेले मत लीजिए। लाभ को जब बाँटा जाता है, तब वह प्रसाद बन जाता है। कर्म करना आवश्यक है और अनिवार्य भी। काम टालने में कभी रुचि नहीं रखें। काम को न करने का अर्थ है समय, शक्ति, क्षमता और हुनर का नाश उचित कार्य नहीं करना यह लापरवाही है। कर्म-फल समाज को निःस्वार्थ तरीके से आभारपूर्वक समर्पित करें।

□

तनावरहित जीवन जीने का रहस्य :: 25

पाठ-3.2
कर्म और कुशलता
(अध्याय-2 , श्लोक 50)

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥2.50॥

अर्थः—समत्व बुद्धियुक्त पुरुष यहाँ (इस जीवन में) पुण्य और पाप इन दोनों कर्मों को त्याग देता है, इसलिये तुम योग से युक्त हो जाओ। कर्मों में कुशलता योग है।

भावार्थः—विचारों की पूर्ण एकाग्रता एवं पूरी प्रतिबद्धता के साथ कार्य करें। तब वह कार्य केवल परिश्रम ही नहीं श्रेष्ठ कार्य बनता है। कुशल कार्य तथा बुद्धिमान कार्य के परिणामस्वरूप आपका कार्य, उत्कृष्ट, अनुकरणीय और आनंद की अनुभूति देने वाला बनता है। कर्मों में कुशलता, शरीर और मन, मन और बुद्धि, बुद्धि और आत्मा, तर्क और रचनात्मकता, विज्ञान और कला, मात्रा और गुणवत्ता, भक्ति, प्रयास और अनुभूति के संकलन से कार्य का सम्पादन करना चाहिए। तभी कार्य कौशलयुक्त उत्तम श्रेणी का कार्य बनता है। कौशल्य में निपुणता लाएँ और मानदंड स्थापित करें।

□

पाठ-3.3
कार्य और ज्ञान
(अध्याय-3 , श्लोक 3)

श्री भगवानुवाच
लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥ 3.3॥

अर्थः—श्री भगवान् बोले, हे निष्ठाप अर्जुन इस मनुष्य लोक में दो प्रकार से होने वाली निष्ठा मेरे द्वारा पहले कही गयी है। उनमें ज्ञानियों की निष्ठा ज्ञान योग से और योगियों की निष्ठा कर्मयोग से होती है।

भावार्थः—ज्ञान—मार्ग विचार प्रधान लोगों के लिए है, विचार अज्ञान को पचा सकता है, समझ सकता है, आपस में बाँट सकता है, वितरण कर सकता है और दे सकता है। ऐसा होने का कारण समझा सकता है और लक्ष्य तक पहुँचने का योग्य मार्ग निकाल सकता है। कर्ममार्ग अमल करने वालों के लिए है। अमल करने वाले कौशल्य सीख सकते हैं। उसमें बढ़ोत्तरी कर सकते हैं, प्रायोगिक एवं व्यवहारिक कार्य कुशलता से कर सकते हैं, वे इस मार्ग पर चल सकते हैं और अपने योगदान से लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। जो अपने विचार ज्ञानमार्ग में एकाग्र और स्थिर करते हैं, वे ज्ञानी एवं दूरदर्शी हैं। जो अपनी कुशलता क्रियामार्ग में एकाग्र और स्थिर करते हैं, वे निपुण और सफल हैं। वास्तविक स्थितियों में इन दोनों मार्ग में प्रयासशील रहना आवश्यक है। दोनों को परस्पर साथ में आगे बढ़ना होता है। अपने कार्य से मूल्य रचें। अपने ज्ञान से श्रेष्ठ रचें।

□

पाठ-3.4
कार्य और प्रकृति
(अध्याय-3 , श्लोक 5)

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥3.5॥

अर्थः—कोई भी मनुष्य किसी भी अवस्था में क्षणमात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता क्योंकि (प्रकृति के) परवश हुए सब प्राणियों से प्रकृतिजन्य गुण कर्म कराते हैं।

भावार्थः—कर्म प्राणीमात्र का मूलभूत गुण है। प्रत्येक प्राणी में कार्य अन्तरनिहित है। उसे कुछ न कुछ कार्य करना ही है। वनस्पति विकासशील है, फल-फूल देती है। प्राणी हलचल करते हैं, प्रजनन करते हैं, खाते हैं, दौड़ते हैं, झगड़ते हैं और खेलते हैं। पक्षी घोंसला बनाते हैं, गाना गाते हैं, उड़ते हैं। मनुष्य चलता है, बैठता है, दौड़ता है, खाता है, बोलता है और अनगिनत क्रियाएँ करता है। जगत में ऐसा कोई भी नहीं है जो हमेशा कुछ न कुछ करता न हो। यह करना मनुष्य में कुदरती स्वभावगत है। इसलिए कार्य को टालने का मतलब है ऊर्जा को विकृत प्रवृत्ति के प्रति मोड़ना। अगर कार्य को टाला नहीं जाता तो उत्तम ही क्यों न करना, क्यों योगदान न करना, सोचिए और मनन करें। मनुष्य प्राणी की तरह चार पैरों पर क्यूँ खड़ा नहीं है। मनुष्य दो पैरों पर इसलिए खड़ा है कि उसके दो हाथ मुक्त रह सकते हैं। मुक्त किसके लिए, कार्य करने के लिए। ये हाथ काम आते हैं वृक्ष उगाने के लिए, मुक्त दान देने के लिए और सदा वितरण करने के लिए, अन्याय के विरुद्ध आंदोलन करने के लिए, लोगों को आधार देने के लिए, उपयोगी होने के लिए।

कार्य दो प्रकार के होते हैं। शारीरिक और मानसिक। मनुष्य शारीरिक और मानसिक दोनों तरह से कार्य करने के लिए स्वतंत्र है। मानव सोचने के लिए, पसन्द-नापसन्द करने के लिए और कार्य करने के लिए स्वतंत्र है। कार्य करना मनुष्य की मूलभूत प्रकृति है। मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार कार्य करता है।

□

पाठ-3.5
कार्य और कर्तव्य
(अध्याय-3, श्लोक 8)

**नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धोदकर्मणः॥३.८॥**

अर्थः—तू शास्त्र विधि से नियत किये हुए कर्तव्य कर्म कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।

भावार्थः—व्यक्ति को जो कार्य सौंपा गया है, वो कार्य उनसे अपेक्षित है। यह उनकी प्राथमिक ज़िम्मेदारी है। उनका यह अति आवश्यक दिव्य कर्म अर्थात् कर्तव्य बनता है। ज़रा—सी भी चूक के बिना कर्तव्य का पालन होना ही चाहिए। कर्तव्य पालन में जिम्मेदारी अदा करने में किसी प्रकार की लापरवाही पूर्णतया टालनी चाहिए। संपूर्ण कर्तव्य पालन अति सुंदर और श्रेष्ठ माना गया है। ज़िम्मा निभाना, किसी के ऊपर उपकार नहीं है वो तो स्वयं के ऊपर ही उपकार है क्योंकि कर्तव्य अदा करने से ही व्यक्ति ज़िम्मेदारी के ऋण से मुक्त हो सकता है और कर्तव्य—पालन मुक्ति और आनंद है। कर्तव्य की अवहेलना बंधन और दुख है। एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन की यात्रा के लिए आपको इंजन की आवश्यकता होती है। कर्तव्य—पालन वह इंजन है जो आपकी जिंदगी और शरीर को आगे ले जाते हैं। कार्य के इस इंजन को कारगर, असरकारक, निर्मल एवं उपयोगी रखें। बीच में रुकावट या विलंब के बिना कर्तव्य—पालन पूरी तरह असरकारक रीति से समय पर रहते मंज़िल पर पहुँचना है। तभी यह जीवनयात्रा सुख, प्रसन्नता और परमानंद के साथ संपन्न हो सकती है। जब आप अपना कर्तव्य परिपूर्ण करते हैं, आपका कार्य आनंद की अभिव्यक्ति बनता है।

□

तनावरहित जीवन जीने का रहस्य :: 29

पाठ-3.6
कार्य और स्वैच्छिक सेवा
(अध्याय-3, श्लोक 22)

**न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥3.22॥**

अर्थ:-हे पार्थ मुझे तीनों लोकों में न तो कुछ कर्तव्य है और न कोई प्राप्त करने योग्य वस्तु अप्राप्त है फिर भी मैं कर्तव्य कर्म में ही लगा रहता हूँ।

भावार्थ:-अंतः करण की आवाज़ से प्रेरित होकर स्वयं कार्य में उत्कृष्ट निपुणता दिखाना यानी कार्य में सहयोगी बनकर एक आदर्श नेता के उदाहरण बनना, यदि सौंपे गये सब कार्य पूरे हो गए हों और कोई भी कार्य बाकी न हो, उसका मतलब ऐसा नहीं कि व्यक्ति कोई भी योगदान के बिना निष्क्रिय रहे। औरों की सफलता के लिए कार्य करना सेवा है। अपनी इच्छा से की गई सेवा सही सेवा है। लोगों की सेवा में परहित चिंतन, परोपकार, प्रमोद भाव, प्रतिज्ञा और प्रशांति के साथ प्रेरित और जिम्मेदार स्वयंसेवक बने रहें। हालाँकि यहाँ कुछ पाना या कहीं पहुँचना नहीं है, किंतु केवल योगदान का स्रोत बनने के लिए नया मार्ग खोजना है। इस मार्ग में सरल रहें। आडम्बर एवं एहसान जताने से बचें। लोगों की आवश्यकताओं को स्वीकार कीजिए और उनकी कठिनाइयों को दूर कीजिए। सौम्य रहें। लोगों को उपयोगी बनाने के लिए सुस्थिर बनके समय-परिस्थिति को समझें और व्याप्त कमियों को दूर कीजिए। साक्षी रहें, करुणा मार्ग पर समानता रखके संभावनाओं को खोजें एवं सुधार करें, समतावान रहें। श्रेयकारक योगदान से बचें। खुशी-खुशी सत्य में स्थापित रहें और उपयोगी सेवा को निरंतर चालू रखने के लिए जिम्मेदारी निश्चित करें। आपके कार्य की कर्मठता से, निपुणता से, योगदान से, समर्पण से की गई सेवा को मानवता की सेवा में परिवर्तित करें। अतः अपने कार्य को सेवा में रूपांतरित करें।

□

पाठ-3.7
कर्म और उदाहरण
(अध्याय-3, श्लोक 23)

**यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥3.23॥**

अर्थः—यदि मैं सावधान हुआ (अतन्द्रित) कदाचित् कर्म में न लगा रहूँ तो हे पार्थ सब प्रकार से मनुष्य मेरे मार्ग का अनुसरण करेंगे।

भावार्थः—नेतृत्व करने वाले उत्तरदायी व्यक्ति जब असरकारक और ठीक तरीके से अपने कार्य नहीं करते हैं, तब अन्य सहकर्मी भी मंद और अप्रभावी हो जाते हैं और अपना कार्य पूरा नहीं करते, किंतु नेतृत्व सक्षम और असरकारक हो जाए तो बाकी के सब लोगों के लिए वे उदाहरण बनते हैं। जिससे कुल मिलाकर कार्य के परिणाम में वृद्धि होती है। व्यक्ति को कार्यफल में होता घाटा या उसके लाभ—हानि होने की वजह बनने के बजाय कार्य प्रक्रिया में प्रभावकारी और विकास की वजह बनना चाहिए। कार्य का अनुकरणीय उदाहरण बनें और अपने योगदान के मूल्य को अनेक गुना बढ़ा दें।

□

पाठ-3.8
कार्य और संवेदनशीलता
(अध्याय-3 श्लोक 26)

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्॥3.26॥

अर्थ:-ज्ञानी पुरुष कर्मों में आसक्त अज्ञानियों की बुद्धि में भ्रम उत्पन्न न करे स्वयं (भक्ति से) युक्त होकर कर्मों का सम्यक् आचरण कर उनसे भी वैसा ही कराये।

भावार्थ:-बुद्धिमान दक्ष और समझदार नेता अपने लाभ की फिक्र के बिना कार्य करता है। कार्य स्वयं ही उसके लिए एक आनंददायक प्रवास बन जाता है। वह अपने फायदे या यश की चिंता नहीं करता है। ऐसा किया गया कार्य समाज के प्रति समर्पण होता है। हालांकि ऐसे अनेक लोग हैं जो अपने फायदे या यश के लिए कार्य करते हैं। बुद्धिमान नेता उनको डाँटकर या उपदेश देकर उनके कार्य में रुकावट पैदा नहीं करते, किन्तु आहिस्ता से उदात्त योगदान के मार्ग पर स्वयं का कर्मयोगी की तरह अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। यानि लम्बी लाइन खींचते हैं। व्यक्ति जब फल का वितरण करने के लिए तैयार होता है, तब वह कार्य समाज के लिए उपयोगी एवं विशिष्ट प्रकार का बनता है। आप सँभाल लेने वाले और बाँटने वाले नेता बनिए। सँभाल लेना एवं बाँटना, आप अपनी आदत बनाइए दक्ष और संवेदनशील नेता बनिए।

□

पाठ-3.9
कार्य और अहंकार
(अध्याय-3, श्लोक 27)

**प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते॥3.27॥**

अर्थः—सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं अहंकार से मोहित हुआ पुरुष मैं कर्ता हूँ ऐसा मान लेता है।

भावार्थः—तीन गुण जो मानवीय प्रकृति रचते हैं वे हैं सत्व, रजस एवं तमस। सात्विक व्यक्ति सात्विक तरीके से कार्य करते हैं। कार्य का आयोजन एवं नियोजन करते हैं। कार्य के सभी पहलुओं का पूर्ण अध्ययन करते हैं। निरीक्षण करते हैं विश्लेषण करते हैं। वे क्षतिरहित कार्य करते हैं। राजसिक व्यक्ति अहंकारी होते हैं। आदर सम्मान के लिए कार्य करते हैं। लक्ष्य को पार कर जाते हैं। कार्य को पुनः पुनः करके गलतियाँ सुधारते हैं। तामसिक व्यक्ति केवल मेहनत करते हैं। जितना ढकेला जाए उतना ही प्रयास करते हैं। तात्कालिक फायदा सोचते हैं। अपनी गलतियों को स्वीकार नहीं करते हैं। सात्विक व्यक्ति योगदान देने के लिए काम करते हैं। राजसिक प्रतिष्ठता के लिए कार्य करते हैं। तामसिक खुद के फायदे के लिए कार्य करते हैं। अज्ञानी व्यक्ति मानता है कि वह खुद कार्य कर रहा है। किन्तु बुद्धिमान और ज्ञानी व्यक्ति जानते हैं कि वे प्रकृति प्रदत्त कार्य करते हैं। वे स्वयं तो उसका निमित्त मात्र हैं। इसलिए आपको अपने स्वभाव में सुधार के लिए प्रयासशील रहना चाहिए और उपयोगी कार्य, वांछित सम्बन्ध और अच्छे विचारों से अपनी मन की शुद्धि करते रहना चाहिए। जब आप अपनी प्रकृति को पार कर जाते हैं। तब आपकी आत्मा प्रकाशित हो जाती है। आपके कार्य समाज सेवा के परम कार्य बन जाते हैं। उत्कृष्ट कार्यों से अहंकारशून्य योगदाता बनिए।

□

तनावरहित जीवन जीने का रहस्य :: 33

पाठ-3.10
कार्य एक पूजा
(अध्याय-18, श्लोक 46)

**यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥18.46॥**

अर्थः—जिस परमात्मा से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति होती है और जिससे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है, उस परमात्मा का अपने कर्म के द्वारा पूजन करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

भावार्थः—जब व्यक्ति समय, प्रेम, सत्य और उत्तरदायित्व को आदर के साथ पूज्य मानता है। वह उस कर्म के साथ जुड़ जाता है। कार्य जब समय पर किया जाता है तो वह असरकारक कार्य है। कार्य जब प्रेमपूर्वक किया जाता है तो वह करुणापूर्ण कार्य है। कार्य जब सच्चाई के साथ किया जाता है, तब वह कार्य प्रभावकारी है। कार्य जब जिम्मेदारी के साथ किया जाता है तो वह नैतिक कार्य है। कार्य जब असरकारक, करुणापूर्ण, प्रभावकारी और नैतिक है और जब मानवता के लिए पूरी श्रद्धा और परमात्मा के लिए पूरे भक्ति-भाव के साथ किया जाता है, तब ही वह कार्य सम्पूर्ण पूजा बन जाता है। ऐसी पूजा भौतिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक है और जो परमात्मा की ओर ले जाती है। कार्य को पूजा की तरह करके सौभाग्यशाली बनें।



पाठ-4.1
नेतृत्व की मिसाल
(अध्याय-3, श्लोक 21)

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥3.21॥

अर्थः—श्रेष्ठ मनुष्य जो जो आचरण करता है दूसरे मनुष्य वैसा वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण देता है दूसरे मनुष्य उसी के अनुसार आचरण करते हैं।

भावार्थः—लोग श्रेष्ठ नेता का अनुसरण व अनुकरण करते हैं और नेताओं के आचरण, व्यवहार व चरित्र से पूरी तरह प्रभावित रहते हैं। इसीलिए नेताओं का परम दायित्व व परम कर्तव्य बन जाता है कि वे सदाचारी व सच्चरित्र बनें। उन्हें अपने आचरण से ऐसे मानक व ऐसी मिसाल कायम करनी होती है जिससे उनकी टीम के सदस्यों को सतत् प्रेरणा व पथ प्रदर्शन प्राप्त होता रहे। एक उत्तम नेता से प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रेरणा पाकर अनेक व्यक्ति उत्तम नेतृत्व के गुणों को विकसित कर सकते हैं। दूसरी ओर जब उच्च पद पर आसीन व्यक्ति निम्न कोटि के कार्य करते हैं तो उनके सहयोगी एवं अनुयायी उनका अनुकरण करते हैं। यहाँ तक कि टोके जाने पर भी अपने आचरण को उचित ठहराते हुए बेधड़क जवाब देते हैं कि वे नेता के सिद्धांतों का ही पालन करते हैं। श्रेष्ठ प्राप्ति के लिए नेताओं को स्वयं श्रेष्ठता की मिसाल बनना होता है। श्रेष्ठता से श्रेष्ठतम का उद्भव है।

□

पाठ-4.2
अराजकता में उभरता नेतृत्व
(अध्याय-4 श्लोक 7)

**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥4.7॥**

अर्थ:—हे भरतवंशी अर्जुन, जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब तब ही मैं अपने आपको साकार रूप से प्रकट करता हूँ।

भावार्थ:—जब सत्य को दबाकर असत्य शक्तिशाली बनकर उभरता है, वह अराजकता की स्थिति है। ऐसी अस्त-व्यस्तता की स्थिति में व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है और अव्यवस्था चरम ऊँचाई पर पहुँच जाती है। ऐसी स्थिति में जिम्मेदार नेता स्वयं पहल करके स्थिति का नियंत्रण करके आगे बढ़ जाता है। उस समय कोई उसको जिम्मेदारी सौंपता नहीं है। वह उसे अकेले ही असत्य के पराभाव और सत्य की पुनः प्रतिष्ठा की जिम्मेदारी लेता है। वह अकेला ही पहल करके अपने दायित्व का निर्वहन करते हुए अपना उद्देश्य पूरा करता है। इस प्रकार उपद्रव की स्थिति में उभरने वाला नेता स्वनिर्मित होता है। एक मोर्चा फतह कर लेने पर सफल नायक के निशान तले अनेक सहयोगी एवं अनुयायी आने लगते हैं और वह शीघ्र ही शक्तिशाली बन जाता है। अव्यवस्था की स्थिति में दायित्व लेकर आगे बढ़ना ही सर्वप्रथम आवश्यकता है। अराजकता की स्थिति में दायित्व लेकर कोई नायक उभरता है।

□

पाठ-4.3
संशय निवारण
(अध्याय-4, श्लोक 42)

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनाऽऽत्मनः।
छित्तैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत॥4.42॥

अर्थः—इसलिये अपने हृदय में स्थित अज्ञान से उत्पन्न आत्मविषयक संशय को ज्ञान खड्ग से काटकर हे भारत, योग का आश्रय लेकर खड़े हो जाओ।

भावार्थः—एक जिम्मेदार नेता दुविधा में घिरे साधक को स्पष्ट दृष्टिकोण की राह दिखाकर उसकी शंकाओं को मिटाकर उसे उत्साहित करता है। निष्क्रियता एवं संशय व्यक्ति की आलस की वजह होती है क्योंकि करूँ या ना करूँ की स्थिति में व्यक्ति फँस जाता है। संशय से समय और शक्ति की काफी बर्बादी होती है। संशय को ज्ञान और विवेकरूपी तलवार से समूल नष्ट कर देना चाहिए। जिम्मेदार नेता संशय में घिरे साधक को अध्ययन व अनुसंधान द्वारा ज्ञान प्राप्त कर मार्ग दिखाता है। इसके पश्चात वह साधक को सूचना, ज्ञान, चिंतन और स्पष्ट दृष्टिकोण पर दृढ़ता से डटे रहने की हिम्मत व हौसला देता है। संशय दूर होने पर साधक आसमान में विद्यमान सूर्य—सा तेजस्वी बनकर कार्य करता है।

□

पाठ-4.4
समदर्शी नेतृत्व
(अध्याय-6 श्लोक 29)

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥6.29॥

अर्थः—सब जगह अपने स्वरूप को देखने वाला और ध्यान योग से युक्त अन्तःकरण वाला योगी अपने स्वरूप को सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित देखता है और सम्पूर्ण प्राणियों को अपने स्वरूप में देखता है।

भावार्थः—ज़िम्मेदार नेता सबके साथ समानता का व्यवहार करता है। वह अपनी टीम के सभी सदस्यों को स्वयं अपने ही समान महत्वपूर्ण समझता है तथा उन्हें वह समस्त सुविधाएँ उपलब्ध कराता है जिनका उपभोग स्वयं करता है। समानता का गुण ज़िम्मेदार नेता में पूर्ण विकसित होता है। औरों में स्वयं तथा स्वयं में औरों को अनुभूत करने की वृत्ति के कारण ज़िम्मेदार नेता में समदर्शिता का संपूर्ण विकास होता है। इस गुण के कारण ज़िम्मेदार नेता अपनी टीम के प्रत्येक सदस्य की हर सुख—दुख में सहभागिता करता है तथा उनके हर कष्ट व आनंद को स्वयं अनुभूत करता है। इस प्रकार वह स्वयं टीम के प्रत्येक सदस्य से सामंजस्य का भाव रखते हुए यह सुनिश्चित करता है कि टीम के सभी सदस्यों की आपस में समानता रखें। समानता गुणवत्ता है।

□

पाठ-4.5
धैर्यदाता नेतृत्व
(अध्याय-6, श्लोक 40)

श्री भगवानुवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
नहि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति॥6.40॥

अर्थः—श्रीभगवान् बोले, हे पृथानन्दन, उसका न तो इस लोक में और न परलोक में ही विनाश होता है क्योंकि हे प्यारे, कल्याणकारी काम करने वाला कोई भी मनुष्य दुर्गति को नहीं जाता।

भावार्थः—जब टीम का कोई सदस्य हार की आशंका से हताश होने लगता है तो जिम्मेदार नेता उसका हौसला बढ़ाता है एवं जोश से काम करने में जुटने की हिम्मत बढ़ाता है। उसमें साहस का संचार करता है। पराजय की आशंका व्यर्थ भय का कारण बनती है। उस स्थिति में जिम्मेदार नेता समझता है कि साध्य और साधन शुद्धि होने तथा सदस्यों और समाज के हित में किए जाने वाले कार्य में असफल होने पर भी कोई हानि नहीं है। कार्य की सफलता या असफलता से अधिक महत्वपूर्ण है कि कार्य के उद्देश्य, साधन और लक्ष्य का निर्धारण सभी संबंधित व्यक्तियों के हित को ध्यान में रखते हुए किए जाएँ। ऐसा होने पर कार्य में सफलता प्राप्त न होने पर भी समाज इस प्रयास की प्रशंसा करेगा। प्रथम प्रयास में सफल न होना असफलता नहीं है। प्रत्येक असफलता से सीख लेकर पुनः प्रयास कर कार्य में सुधार करते हुए सफलता प्राप्त की जा सकती है। एक दृढ़निश्चयी टीम अपनी कमियों को समझ तथा सुधारकर बेहतर प्रदर्शन करते हुए शुद्ध साधनों से उच्चतम उद्देश्यों को प्राप्त कर लेती है। पराजय व दोषारोपण के भय का निराकरण होने पर टीम का प्रत्येक सदस्य परिणाम की परवाह किए बगैर पूरे जोश से कार्य में जुट जाता है। एक जिम्मेदार नेता के लिए परिणाम से अधिक महत्वपूर्ण है कार्य की प्रक्रिया क्योंकि उसे पूर्ण विश्वास है कि कोई भी कार्य अच्छी तरह से किए जाने पर सफलता अंत में सुनिश्चित है। सत्कर्म का असफल प्रयास भी असत्य कर्म की सफलता से अधिक सार्थक है।

□

तनावरहित जीवन जीने का रहस्य :: 39

पाठ-4.6
मूल्यवर्द्धक नेतृत्व
(अध्याय-7, श्लोक 7)

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥7.7॥

अर्थः—हे धनंजय! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत सूत्र में सूत्र के मणियों के सदृश मुझमें गुँथा हुआ है।

भावार्थः—ज़िम्मेदार नेता यह जानता एवं मानता है कि उसके कर्तव्य का ज़िम्मा व असफलता का दोष देने के लिए उसके ऊपर कोई नहीं है। उसे यह मानने में भी कोई हिचक नहीं होती कि आखिरकार उसे ही हर समस्या के समाधान हेतु उचित निर्णय व उसके अनुरूप आवश्यक कदम उठाने की पहल करनी है। आवश्यकता पड़ने पर किसी कार्य के लिए वह किसी और की नहीं बल्कि स्वयं भी कार्य की ज़िम्मेदारी ले लेता है। उसकी इसी दृढ़नीति के कारण लोग उसके सहारे के भरोसे कोई भी कठिन एवं जोखिम भरा कार्य शुरू करने में नहीं झिझकते हैं। ज़िम्मेदार नेता अपनी टीम के सदस्यों को 'मैं' से 'हम' बनाने की प्रेरणा देकर व्यक्तियों के समूह को संगठित टीम बना देता है। संगठित टीम बनने पर उसके प्रत्येक सदस्य की व्यक्तिगत क्षमता कई गुना ज़्यादा बढ़ जाती है। ज़िम्मेदार नेतृत्व सबको एकता के सूत्र में बाँधे रखता है तब प्रत्येक का व्यक्तिगत प्रयास सबका संयुक्त प्रयत्न बन जाता है। एकजुट कार्य करने से अधिक सदस्य एक साथ उच्चतर मूल्य व योगदान से चमक उठते हैं। नेतृत्व का मतलब है व्यक्तियों के झुण्ड को अमूल्य संघ में रूपान्तरित करना।

□

पाठ-4.7
असाधारण दृष्टि
(अध्याय-11, श्लोक 5)

श्री भगवानुवाच
पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च॥11.5॥

अर्थः—श्रीभगवान् ने कहा—हे पार्थ, मेरे सैकड़ों तथा सहस्रों नाना प्रकार के और नाना वर्ण तथा आकृति वाले दिव्य रूपों को देखो।

भावार्थः—ज़िम्मेदार नेता अपने साथियों को हजारों दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करता है। वह स्वयं परिस्थिति को देखते हुए अपनी टीम में भी वैसी दृष्टि विकसित करने एवं उन्हें भी परिस्थिति को देखने में मदद करता है। दृष्टि प्रेरक होती है तथा विजन एवं दर्शन का निर्माण करती है। तत्पश्चात् टीम के सभी सदस्य उस विजन को साकार करने के लिए आवश्यक मिशन ध्येय कार्य में जुट जाते हैं। ज़िम्मेदार नेता सिर्फ चर्चा, वार्ता, तर्क, विकल्पों के विकास व उनके अनुरूप ही निर्णय नहीं करता। बल्कि युक्ति नवनिर्माण हेतु बहुआयामी दृष्टिकोण से चिंतन करते हुए अपने साथियों को प्रेरित करता है। इस प्रकार ज़िम्मेदार नेता की उपस्थिति से ही वातावरण में नवपद्धति से नवनिर्माण हेतु उत्साह व साहस का संचार हो जाता है। ऐसा नेता अपनी टीम के सदस्यों के साथ मिलकर समुचित कार्यों का योगदान निश्चित कर देता है। दृष्टा असंभव की कल्पना करता है और कर्तव्यनिष्ठ उसको सम्भव करता है। इस प्रकार धीरे-धीरे नेता अति इन्द्रियों का उपयोग करते हुए दिव्यद्रष्टा बन जाता है।

□

पाठ-4.8
हार्दिक नेतृत्व
(अध्याय-13, श्लोक 17)

**अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥13.17॥**

अर्थः—वे परमात्मा स्वयं विभागरहित होते हुए भी सम्पूर्ण प्राणियों में विभक्त की तरह स्थित हैं। वे जानने योग्य परमात्मा ही सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करने वाले, उनका भरण—पोषण करने वाले और संहार करने वाले हैं।

भावार्थः—जिम्मेदार नेता अपनी टीम के सदस्यों के बीच केवल मानसिक व बौद्धिक स्तर पर ही नहीं बल्कि भावनात्मक स्तर पर भी एकरूपता स्थापित करता है। हार्दिक एकरूपता होने से ही सदस्यों में आत्मीय संबंध बन जाते हैं तथा संस्थान के वातावरण में आर्द्रता, प्रियता व मित्रता की भावना व्याप्त हो जाती है। आपस में प्रेमभाव रखते हुए दिल लगाकर कार्य करने वाली टीम के सदस्यों को प्रसन्नता की अनुभूति होती है। लोगों के हृदय में एक—दूसरे के प्रति प्रेम की भावना अंतर ज्योति है, यह वह ज्ञान है जिसका साक्षात्कार अति आवश्यक है। भावनात्मक एकात्मकता लोगों में समानता की भावना विकसित करती है। यह समानता ही ज्ञान का परम ध्येय है। इस प्रकार जिम्मेदार नेता और उसकी जिम्मेदार टीम के सदस्य शारीरिक श्रम, बौद्धिक चिंतन व हार्दिक भावनाओं को एकाकार कर कार्य करते हैं। सामंजस्य व प्रसन्नता ऐसी टीम की अमूल्य निधि है। शारीरिक, बौद्धिक व हार्दिक एकात्मकता ही सफल प्रसन्न समाज है।



पाठ-4.9
नेतृत्वसार
(अध्याय-18, श्लोक 66)

**सर्वधार्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥18.66॥**

अर्थः—सब धर्मों का परित्याग करके तुम एक मेरी ही शरण में आओ, मैं तुम्हें समस्त पापों से मुक्त कर दूँगा, तुम शोक मत करो।

भावार्थः—ज़िम्मेदार नेता की टीम के हर सदस्य को दृढ़-विश्वास होता है कि यदि किसी कठिन परिस्थिति में उसके द्वारा उपयोग में लाये गये सभी उपाय व्यर्थ हो जाएंगे तो उसका नेता उसके साथ ऐसी स्थिति में शामिल हो जाएगा और हर समस्या का समाधान खोज लेगा। एक ज़िम्मेदार नेता अपनी टीम के सदस्यों को प्यार, अधिकार व भरोसा देने के बाद भी टीम के विपरीत परिणाम के लिए स्वयं को अंतिम उत्तरदायी समझता है। विकट परिस्थिति में वह अपने उत्तरदायित्व से अलग नहीं होते हुए हमेशा सदस्यों के साथ रहता है। इससे टीम के सदस्य निर्भय और निश्चिंत हो जाते हैं। यह निश्चिन्तता टीम के सदस्यों में शक्ति का संचार करती है जिससे वह स्वयं ही, ध्येय प्राप्ति के लक्ष्य बना लेते हैं तथा आने वाली समस्याओं से साहस के साथ जूझकर उनका समुचित समाधान प्राप्त करते हैं। क्योंकि वे पूरी तरह आश्वस्त होते हैं कि हमारे सारे प्रयत्न, हमारे सारे तरीके विफल होने पर हम अपने नेता से समाधान के लिए मिल सकते हैं। नायक का आश्वासन उनके लिए क्षतिपूर्ति का वरदान बनकर कार्य करता है और उनके दिलो-दिमाग में यह भावना रहती है कि सबकुछ खो जाने पर भी कोई हानि होने वाली नहीं, इस तरह निश्चिंत होने के कारण वे आत्मविश्वास से परिपूर्ण हो जाते हैं और बिना कुछ खोए सबकुछ पा लेते हैं। ज़िम्मेदार नेता व उसकी टीम का यह साहस एवं दृढ़विश्वास ही उनकी सफलता का मूल आधार स्तंभ है। निराशा के घोर अंधकार में नेता आशा की किरण है।

□

पाठ-4.10
सफल टीम
(अध्याय-1, श्लोक 6)

**युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः॥1.6॥**

अर्थः—यहाँ (पाण्डवों की सेना में) बड़े-बड़े शूरवीर हैं, जिनके बहुत बड़े-बड़े धनुष हैं तथा जो युद्ध में भीम और अर्जुन के समान हैं। उनमें युयुधान (सात्यकि), राजा विराट और महारथी द्रुपद भी हैं। धृष्टकेतु और चेकितान तथा पराक्रमी काशिराज भी हैं। पुरुजित् और कुन्तिभोज ये दोनों भाई तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ शैब्य भी हैं। पराक्रमी युधामन्यु और पराक्रमी उत्तमौजा भी हैं। सुभद्रापुत्र अभिमन्यु और द्रौपदी के पाँचों पुत्र भी हैं। ये सबके सब महारथी हैं।

भावार्थः—सुयोग्य नेता और सुपात्र साधक का मेल ऐसा आदर्श मेल है जिससे संपूर्ण सफलता, सुनीति, समृद्धि व विकास सुनिश्चित होता है। टीम के बिना नेता का कोई महत्व नहीं है क्योंकि वही उसके दर्शन को साकार करने के साधन एवं कार्यों को गति प्रदान करने वाली होती है। बिना नेता के टीम भी दिशाहीन है। इसलिए दिशा, गति तथा दर्शन और कार्य का मेल श्रेष्ठ संयोग है। जिम्मेदार नेता प्रकाश है और कार्य साधक इंजन है। शक्तिमान इंजन प्रखर प्रकाश के साथ असाधारण प्रगति कर सकता है। अच्छे नेता व उसकी टीम काम को सफलता और समृद्धि के साथ ही पूर्ण करते हैं। प्रत्येक प्रतिभागी और पूरी टीम की प्रगति, विकास, उन्नति और समृद्धि ही सम्पूर्ण विकास है और सुनीति ही वह नीति है जो यह सुनिश्चित करती है कि चिंतन की सभी धाराएँ समन्वय और स्पष्टता के साथ दर्शन व उद्देश्यों की दिशा में ही बढ़ रहे हैं। सर्वकल्याण के लिए स्पष्टता अनिवार्य है। दिशायुक्त गति ही सर्वोत्तम उन्नति है।

□

ध्यान योग

पाठ-5.1

ध्यान का तत्व

(अध्याय-13 , श्लोक 25)

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे॥13.25॥

अर्थ:-कई मनुष्य ध्यानयोग के द्वारा, कई सांख्ययोग के द्वारा और कई कर्मयोग के द्वारा अपने आपसे अपने आपमें परमात्मतत्त्व का अनुभव करते हैं।

भावार्थ:-चित्त का एकाग्र स्थिर होना ध्यान है। दृष्टि और ध्यान को संसार से वापस खींचकर आँख बंद करके अपने स्वयं में देखें। कोई उदात्त विचार से, पूरे मनोयोग से अपने आपको जोड़े रखना भी ध्यान है। अपने मन और ध्यान को पूर्ण रूप से कार्य के ऊपर रखना कार्य का ध्यान है। मन और ध्यान को गहन और पूर्णरूप से कोई विषय जानने के लिए विषय का क्या, कब, कौन, कैसे और क्यों के ऊपर केंद्रित होना ज्ञान का ध्यान है। आप क्या जानते हो, करते हो, किसको समर्पित हो और आप क्या हो, उसका मौनपूर्वक साक्षी बनना स्वयं का ध्यान है। ध्यान रूपी अष्टांग योग के आठ अंग हैं। यम यानि कि बाहरी संयम; नियम यानि कि आंतरिक संयम; आसन यानि स्थिर स्थिति में बैठना प्राणायाम; प्रत्याहार यानि बाहरी जगत में से निकलना; धारणा यानि समाहित करना; ध्यान यानि पूर्ण एकाग्रता और चिंतन और समाधि यानि स्व के साथ एक होना। तत्पश्चात आप अभ्यास से निश्चित एकाग्रता प्राप्त करेंगे। ध्यान परम तत्व के साथ स्वयं को पूर्णतया पुनः पूर्ति है। जैसे बिजली के नेटवर्क के साथ अपनी बैटरी को रिचार्ज करते हैं। ध्यान वैश्विक चेतना के साथ आपको रिचार्ज करता है।

□

तनावरहित जीवन जीने का रहस्य :: 45

पाठ-5.2
यम, यानि बाहरी संयम
(अध्याय-6, श्लोक 14)

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत् मत्परः॥6.14॥

अर्थः—जिसका अन्तःकरण शान्त है, जो भयरहित है और जो ब्रह्मचारिव्रत में स्थित है, ऐसा सावधान योगी मन का संयम करके मेरे में चित्त लगाता हुआ मेरे परायण होकर बैठे।

भावार्थः—अपने आपमें शांतिपूर्ण रहिए और अहिंसा, सत्य, सांसारिक अलिप्तता में रहकर शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक निर्मलता के द्वारा किसी से कुछ लिए बिना परमात्मा से जुड़े रहना बाहरी संयम है। दूसरों को हानि पहुँचाना खुद को हानि पहुँचाना होता है। जिसको आप हानि पहुँचाते हैं, वह तो अवश्य दुखी होता है। उससे उपस्थित अपराध भाव और उदासी से आप भी दुख पाते हैं। नकारात्मकता पलट के वार करती है और आपको ही आंतरिक स्तर पर लगती है। क्रिया से, भावना से, विचारों से किसी की हानि न करें। दूसरों के प्रति और अहिंसक रहने से आप अंदर से शांति और आनंदपूर्ण रहेंगे। सत्य बोलें, सत्य चमकता है। सदा से ही सत्य पूर्ण रहिये और वाद के विवाद से बचिये। किसी से कुछ भी अपेक्षा मत रखिये। दूसरों की सेवा कैसे करना, उसका भाव रखिए। अपेक्षा एवं उपेक्षा एक विषचक्र है। सेवाभाव, ध्यान, संतोष बहुमूल्य अमृत चक्र है। अपेक्षा आपको निराशा और असुख की तरफ ले जाती है। सेवाभाव प्रेम और सुख के प्रति ले जाता है। अंतरात्मा के साथ जुड़े रहने के लिए और इससे परमात्मा के साथ जुड़ने के लिए अंतर्मन और विचारों से निर्मल रहें। यम यानि बाहरी संयम आपके ध्यान के प्रयास में महत्वपूर्ण योगदान करता है।

□

पाठ-5.3
ध्यान और नियम, यानि आंतरिक संयम
(अध्याय-3, श्लोक 7)

**यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥3.7॥**

अर्थः—हे अर्जुन, जो मनुष्य मन से इन्द्रियों पर नियन्त्रण करके आसक्ति रहित होकर (निष्काम भाव से) समस्त इन्द्रियों के द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है।

भावार्थः—असरकारक ध्यान के लिए बाहरी शुद्धि एवं अभ्यास के साथ आन्तरिक शुद्धि तथा अभ्यास आवश्यक है। ध्यान के लिए पवित्र, स्वच्छ और तैयार होने हेतु आप हमेशा बाहरी और आंतरिक शुद्धि की मार्गदर्शिका का अनुसरण करें। आन्तरिक शुद्धि में शौर्य, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर के प्रति पूर्ण श्रद्धा शामिल है। जब आप सुख, संपत्ति व आपके पसंद की सब चीजों की कामना का त्याग करते हैं तब आप निर्मल मन से अपनी सब इंद्रियों और कर्मेन्द्रियों को संयम में और नियंत्रण में ला सकते हैं। तब आपको कोई उपभोग की ज़रूरत नहीं रहती और आप सभी इच्छाओं की जो घास-फूस है, उससे परे हो जाएंगे। आप केवल अपनी आवश्यकताओं के जो बीज हैं, उसकी पूर्ति करते हैं। तब आप अंदर और बाहर से निर्मल हैं। अधिक से अधिक की तृष्णा न रखते हुए जो भी है और जो भी आता है उसके स्वीकार में सुखी और संतुष्ट हैं। तब अपने आपको चिंतन मर्यादित आहार में मन लगा सकते हैं। इसके लिए अंगों और इंद्रियों को संयम से तपाना होता है। ध्यान किसी विषयवस्तु पर एकाग्र होना है। स्वाध्याय प्रत्यक्ष शिक्षक के बिना अपने आप सीखना है। स्वशिक्षण से सत्य को जानना एवं सीखना है। नम्रता, संपूर्ण श्रद्धा और आंतरिक संयम यानि नियम से आप परम प्रकाश प्राप्त करने के लिए समर्थ होते हैं और वही ईश्वर की प्राप्ति है।

□

पाठ-5.4
ध्यान और आसन
(अध्याय-6, श्लोक 11, 12)

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चौलाजिनकुशोत्तरम्॥6.11॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥6.12॥

अर्थः-शुद्ध भूमि पर जिस पर क्रमशः कुश, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं जो न अत्यन्त ऊँचा है और न अत्यन्त नीचा ऐसे अपने आसन को स्थिर स्थापन करके उस आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करें।

भावार्थः-ध्यान के लिए उचित ढंग से शरीर को स्थित रखना है। तभी आपका शरीर हमेशा बिना रुकावट के ध्यान की कठोरता के लिए तैयार बनेगा। सही आसन की स्थिति में रुकावट नहीं होती। हलचल ऊर्जा है जो ध्यान से आपको दूर करती है। ध्यान के लिए कोई पवित्र स्थान पर शरीर को सही स्थिति में उचित ऊँचे जहाँ असुविधा न हो, अति आराम या बेचैन कारक न हो, ऐसे सही आसन पर आप ध्यान के लिए बैठिये। इलाज या पीड़ा के बिना सहज आसन स्थिर ध्यान की तैयारी के लिए आवश्यक है। आध्यात्मिक एकता प्राप्ति के लिए तटस्त आसन की स्थिति में बैठना आवश्यक है।

□

पाठ-5.5

ध्यान और प्राणायाम

(अध्याय-4, श्लोक 29, अध्याय-5,
श्लोक 27 और अध्याय 15 श्लोक 14)

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥4.29॥
स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ॥5.27॥
अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥15.14॥

अर्थः—दूसरे कितने ही प्राणायाम के परायण हुए योगी लोग अपान में प्राण का पूरक करके प्राण और अपान की गति रोककर फिर प्राण में अपान का हवन करते हैं तथा अन्य कितने ही नियमित आहार करने वाले प्राणों का प्राणों में हवन किया करते हैं। ये सभी साधक यज्ञों द्वारा पापों का नाश करने वाले और यज्ञों को जानने वाले हैं।

बाह्य पदार्थों को बाहर ही छोड़कर और नेत्रों की दृष्टि को भौंहों के बीच में स्थित करके तथा नासिका में विचरने वाले प्राण और अपान वायु को सम करके जिसकी इन्द्रियाँ मन और बुद्धि अपने वश में हैं जो मोक्षपरायण है तथा जो इच्छा भय और क्रोध से सर्वथा रहित है वह मुनि सदा मुक्त ही है।

मैं ही समस्त प्राणियों के देह में स्थित वैश्वानर अग्निरूप होकर प्राण और अपान से युक्त चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।

भावार्थः—ध्यान, श्वास व नियमन के साथ जुड़ा है। आपको शायद ख्याल आता होगा कि जब आप बोलते हैं, तब श्वसन नहीं होता है और जब श्वसन हो रहा हो तो आप बोलते नहीं हो, वाचा और श्वसन वैकल्पिक रूप से एक—दूसरे को रोकते हैं। श्वास नियमन, वाचा नियमन मन नियमन भी है। आप जब श्वास के ऊपर ध्यान देते हैं तब आपका मन हिलता नहीं है, और

तनावरहित जीवने का रहस्य :: 49

इधर—उधर भागता नहीं है। इसलिए जब हम रेस के लिए दौड़ना शुरू करते हैं या जब बॉल को मारने के लिए तैयार होते हैं या फिर महत्व का भाषण देना आरंभ करते हैं, हम अपनी साँस रोक लेते हैं। साँस रोकने से ध्यान केंद्रित होता है और अपनी ऊर्जा किसी प्रयास या कार्य के लिए छूटने को तैयार हो जाती है। इसलिए श्वास में नियमन यानि प्राणायाम आवश्यक है। श्वसन क्रिया में चार स्थितियाँ होती हैं। श्वास से वायु को अंदर लेना, वायु को पूरा अंदर भरके रखना, उस श्वास को बाहर निकालना और खालीपन पकड़के रखना। ऐसे श्वसन में पूरक, कुंभक, रेचक, शून्यक सही मात्रा में होना, प्राणायाम है। श्वास नियमन मन का नियमन और स्वयं का नियमन है। श्वास लेना, भरना, छोड़ना और खाली रहना निर्धारित समय के लिए करने से मन तीक्ष्ण स्वस्थ रहता है और ध्यान में सही हिस्सेदार बन सकता है। असरकारक ध्यान के लिए आपको ध्यान व मन को प्राणायाम के साथ एकरूप करना होता है। आँख बंद करके, ध्वनि, स्पर्श, दृश्य, स्वाद और गंध यह सब बाहरी सम्पर्क को टालकर ध्यान अपने भावों के माध्यम में केन्द्रित करके प्राण—अपान दोनों को सम करके ध्यान करना होता है। हर श्वास में आपके आत्मसत्त्व का अनुभव सबका साक्षी बनकर करें।



पाठ-5.6
ध्यान और प्रत्याहार
(अध्याय-2 , श्लोक 58)

**यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥2.58॥**

अर्थः—कछुवा अपने अंगों को जैसे समेट लेता है वैसे ही यह पुरुष जब सब ओर से अपनी इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषयों से परावृत्त कर लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

भावार्थः—ध्यान अन्तर्दृष्टि एवं प्रेरणा की प्रक्रिया है। बाहरी जगत और चीजों से दूर जाना, ध्यान के लिए आवश्यक और अनिवार्य है। बाहरी जगत से चार आंतरिक इंद्रियाँ मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका से जुड़े रहते हैं जो आपको ध्वनि, स्पर्श, स्वाद और गंध का अनुभव देती हैं, जो सुखदायी या दुखदायी हो सकती हैं। मुँह, हाथ, पैर, जननांग और शौच अंग ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ जगत को प्रतिक्रिया देती हैं। वह भी सुखदायी या दुखदायी हो सकती हैं। इस तरह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ आपके जगत से सुख—दुख पाने के लिए या जगत को सुख—दुख देने के लिए साधन माध्यम हैं। चार ज्ञानेन्द्री और पाँच कर्मेद्री आपकी और जगत की सुख—दुख की वजह बनती हैं। ध्यान ही सुख—दुख के परे रहने के लिए उत्तम प्रक्रिया है। किंतु ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ बार—बार सुख और दुख के घात—प्रत्याघात से आपको और जगत को हथौड़े की तरह पीटती हैं। इसलिए सदा सक्रिय और व्यस्त इंद्रियों को खींच लेना आवश्यक है। जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है और पहुँच के बाहर हो जाता है। वैसे ही इन दस इंद्रियों को समझ लेना चाहिए एवं हमें इन्हें समेटना सीखना चाहिए। निद्रा में यह रोजाना अर्द्धचेतना या अवचेतना में होती है। ध्यान में सचेत रहकर यह अवस्था लानी होती है। ध्यान में सचेत रहकर समय—समय पर इंद्रियों को खींच लेने से आप स्वयं को बाहरी जगत

तनावरहित जीवन जीने का रहस्य :: 51

के शोरगुल से अलग करते हैं। इतना ही नहीं, आप अंदर से और सर्वव्यापी चेतना से संकेत पाते हैं। तभी आप संसार को जिम्मेदार, सहायक और संभावित प्रतिक्रिया दे सकते हैं। संसार से सहायक संवादित अनुभव पा सकते हैं। अपनी इन्द्रियों को खींच लीजिए और जगत को जीत लीजिए।



पाठ-5.7
ध्यान और धारणा
(अध्याय-12, श्लोक 6, 7)

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥12.6॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥12.7॥

अर्थः—परन्तु जो भक्तजन मुझे ही परम लक्ष्य समझते हुए सब कर्मों को मुझे अर्पण करके अनन्य योग के द्वारा मेरा (सगुण का) ही ध्यान करते हैं। हे अर्जुन! उन मुझमें चित्त लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु रूप संसार—समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूँ।

भावार्थः—ध्यान करने के लिए आपकी सब आन्तरिक सुविधा यानि फैंकल्टीज को एकत्रित करके अंतरात्मा और परमात्मा के प्रति एकरूप करना आवश्यक है। इसके लिए गीता में बताए गए जो भी बुरे और ग़लत कार्यों से खुद को खींच लेना है, इससे अच्छा विकल्प है। अपने सभी कार्य योगदान, परिणाम और फल संपूर्णतया परमात्मा को अर्पण करना। फिर अपने आत्म प्रकाश के एक चित्त से ध्यान केंद्रित करें। उस एक परम तत्व को पूजें और अपने सब कार्य भावना, विचार और सब परिणाम संबंध वास्तविकता, ये उस परम को समर्पित करें तब आप उस एक परम से जुड़ेंगे और अपने अंदर परम आनंद की अनुभूति पाएंगे। आत्मतत्व की संपूर्ण धारणा आपको दिव्य आशीष प्रदान करेगी।

□

पाठ-5.8
ध्यान और चेतना
(अध्याय-18, श्लोक 52)

**विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥18.52॥**

अर्थः—जो विशुद्ध (सात्त्विकी) बुद्धिसे युक्त, वैराग्यके आश्रित, एकान्त का सेवन करनेवाला और नियमित भोजन करने वाला साधक धैर्यपूर्वक इन्द्रियों का नियमन करके, शरीर वाणी मन को वश में करके, शब्दादि विषयों का त्याग करके और रागद्वेष को छोड़कर निरन्तर ध्यान योग के परायण हो जाता है, वह अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह का त्याग करके एवं निर्मम तथा शान्त होकर ब्रह्म प्राप्ति का पात्र हो जाता है।

भावार्थः—एकान्त में रहना और आत्मतत्त्व का अनुभव करना ही ध्यान की चेतना बनने की प्रक्रिया है। जब आप जगत के प्रति कोई बाहरी संपर्क या रुचि के बिना रहते हैं, आप वह बनने के लिए तैयार हो जाते हैं और खाने—पीने से आपका रस चला जाता है। संपूर्ण अलिप्तता के साथ आप जो कहते हैं, आप जो करते हैं, आप जो सोचते हैं सब आपकी अंतरात्मा में परमात्मा से एकरूप हो जाता है। जगत से छूटकर वैश्विक चेतना जो कि आंतरिक चेतना ही है, उससे जुड़ें और ध्यान मग्न हो जाएँ।



पाठ-5.9
ध्यान और एक होना
(अध्याय-2, श्लोक 53)

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि॥2.53॥

अर्थ:-जब अनेक प्रकार के विषयों को सुनने से विचलित हुईं तुम्हारी बुद्धि आत्मस्वरूप में अचल और स्थिर हो जायेगी तब तुम (परमार्थ) योग को प्राप्त करोगे।

भावार्थ:-एकाग्र चित्त की धारणा से आप वो बनने की अंतिम अवस्था में होते हैं जहाँ से आप परे हो जाते हैं। आपने अभी तक जो सुना है और सीखा है उसको पार कर पायेंगे। आप सब अभिप्राय और दर्शनों से यहाँ तक कि आपकी व्यवसायिक एवं व्यवहारिक शिक्षा और संकल्पनाओं को भी पार करेंगे। फिर अंशमात्र विचलन के बिना आपकी बुद्धि समता पर्वत जैसी स्थिर हो जाएगी और आप स्वयं ही वास्तव में परमतत्व हो जाएंगे। आप वह परमतत्व हो।

□

पाठ-6.1
श्रद्धा और पूर्ण समर्पण
(अध्याय-9, श्लोक 34)

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥9.34॥

अर्थ:-तुम, मुझमें स्थिर मन वाले बनो, मेरे भक्त और मेरे पूजन करने वाले बनो, मुझे नमस्कार करो इस प्रकार मत्परायण (अर्थात् मैं ही जिसका परम लक्ष्य हूँ ऐसे) होकर आत्मा को मुझसे युक्त करके तुम मुझे ही प्राप्त होओगे।

भावार्थ:-श्रद्धा पूर्ण समर्पण है। तन, मन, बुद्धि और आत्मा सहितपूर्ण समर्पण ही श्रद्धा है। आत्मा एवं परमात्मा एक ही है। ऐसी समझ के साथ समर्पण कीजिए। आप जब प्रदान करते हैं तो आदान होता ही है। अपनी सभी क्रियाओं का समर्पण करें और सब ओर से सर्वव्यापी परमात्मा से कृपा दान पाइये। भावनाओं से समर्पित रहिये और प्रेम पाइये। बुद्धि से समर्पित रहें और परम ज्ञान प्राप्त करें। अंतरात्मा से समर्पित होकर परमात्मा से एकता पाएँ, भक्त बनें और ईश्वर की कृपावर्षा पाएँ। अपने समस्त कार्यों को परमात्मा को अर्पण करते रहें और परम कृपा का प्रसाद पाते रहें। सबको और परमात्मा को नमन करें और आशीष पाएँ। परमात्मा को ही अपना लक्ष्य बनाइए, सदा परमात्मा से जुड़े रहिये। आपको अपने दिव्य भाग्य का लाभ अवश्य मिलेगा। समर्पण कीजिए और स्वीकार कीजिए।

□

पाठ-6.2
श्रद्धा और सद्भावना
(अध्याय-11, श्लोक 55)

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥11.55॥

अर्थः—हे पाण्डव, जो पुरुष मेरे लिए ही कर्म करने वाला है, और मुझे ही परम लक्ष्य मानता है, जो मेरा भक्त है तथा संगरहित है, जो भूतमात्र के प्रति निर्वैर है, वह मुझे प्राप्त होता है।

भावार्थः—अपने कार्य परमात्मा को अर्पण करने का अर्थ है अपना कार्य आसपास के लोगों को ही अर्पण करना, आपका हरेक कार्य अभावग्रस्त लोगों की सेवा के लिए ही है। दिव्यता का निवास सब लोगों में ही है और विशेषकर तक्लीफ़ में फँसे लोगों में वो अधिकतम तेजस्वी होता है। निजी स्वार्थ या भौतिक जगत से अलग रहें किंतु निस्वार्थ भाव से सबको देते रहिये, पूर्ण श्रद्धावान रहिए, किसी से घृणा मत कीजिए। घृणा ऐसा विष है जिससे आप घृणा करते हो, उसको हानि नहीं पहुँचाता बल्कि यथा समय आप पर ही गहरा असर डालता है, पर प्रेम अमृत है जो प्रेम करने वाले और प्रेम पाने वाले दोनों के लिए पुष्टिकारक है। सबको और हर एक को प्रेम करें। याद रहे प्रेम का अर्थ है लोग जैसे भी हैं उनको स्वीकार करना और फिर उनके सुधार और उन्नति के लिए प्रयासशील रहना, लोगों को जब आप प्रेम करते हैं तो लोग आपके प्रति श्रद्धावान हो जाते हैं और समस्त समाज जोकि ईश्वर का ही स्वरूप है, आपको प्रेम करने लगता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे आप निर्मल बनकर दिव्यता के प्रति अग्रसित होते हैं। घृणा नहीं प्रेम कीजिए।

□

तनावरहित जीवन जीने का रहस्य :: 57

पाठ-6.3
श्रद्धा और सेवा
(अध्याय-12, श्लोक 2)

**मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥12.2॥**

अर्थः-श्री भगवान् ने कहा, मुझमें मन को एकाग्र करके नित्य युक्त हुए जो भक्तजन परम श्रद्धा से युक्त होकर मेरी उपासना करते हैं, वे मेरे मत से, युक्ततम हैं अर्थात् श्रेष्ठ हैं।

भावार्थः-आध्यात्मिकता से जुड़ने से आप अधिक उत्साहित बनेंगे। उसी उत्साह एवं ऊर्जा से आप वृद्ध, बालक एवं वंचित की सेवा में लगे रहें। दिव्यता आपकी सेवाओं का अनुमोदन करेगी और आपको शुभ आशीष प्रदान करेगी। परिणामस्वरूप समाज में आपकी सार्थकता सिद्ध होगी एवं आप अधिक सक्षम व समर्थ बनेंगे। इस तरह दिव्यता की ओर आपकी यात्रा सुखद होगी। मंदिर, गिरिजाघर, मस्जिद, गुरुद्वारे में पूजा की अपेक्षा मनुष्य के अंदर विराजमान ईश्वर की सेवा करने वाले ईश्वर को अधिक प्रिय है। समाज में योगदान और सेवा दान करने वाला केवल पूजा करने वालों से अधिक सार्थक है। अपनी संपूर्ण क्षमता एवं ऊर्जा से योगदान करें। सेवा करने का आपका सामर्थ्य बना रहे, ऐसी प्रभु से प्रार्थना करें व निरंतर बढ़ती हुई ऊर्जा से सेवा कार्य में जुटे रहें।



पाठ-6.4
मन बुद्धि के साथ श्रद्धा
(अध्याय-12, श्लोक 8)

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥12.8॥

अर्थः-तुम अपने मन और बुद्धि को मुझमें ही स्थिर करो, तदुपरान्त तुम मुझमें ही निवास करोगे, इसमें कोई संशय नहीं है।

भावार्थः-अपने चित्त को आध्यात्मिक एवं समाज के लिए समर्पित करें। अपने विचार अपना चिंतन अध्यात्म को समर्पित कीजिए। तब आप समाज के हृदय में श्रद्धा एवं सम्मानपूर्वक बस जाते हैं। जब आप अपने विचार और भावना एवं सेवा परमात्मा को यानि कि आपके आसपास के लोगों को समर्पित करते हैं तो आपको सब सदा के लिए याद रखेंगे। आपका सम्मान श्रद्धा से करेंगे। सोचिये, अनुभूति कीजिए और सेवा कीजिए।

□

पाठ 6.5
श्रद्धा और प्रेमपूर्ण पद्धति
(अध्याय-18, श्लोक 65)

**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥18.65॥**

अर्थ:-तुम मच्चित, मद्भक्त और मेरे पूजक (मद्याजी) बनो और मुझे नमस्कार करो (इस प्रकार) तुम मुझे ही प्राप्त होओगे यह मैं तुम्हें सत्य वचन देता हूँ, (क्योंकि) तुम मेरे प्रिय हो।

भावार्थ:-अपना मन स्थिर कीजिए। भक्त बनिए और परम तत्व को समाज को अर्पण कीजिए। जब आप समाज को और परमेश्वर को समर्पण और योगदान देते हैं, तब आप अवश्य समाज के अति निकट और प्रिय बनते हैं। यह ऐसा वचन है जो परमात्मा द्वारा समाज के माध्यम से आपके प्रति परिपूर्ण किया जाता है। आपके योगदान, सेवा एवं समर्पण को अपने हस्ताक्षर होने दें।

□

पाठ-7.1

एकता सभी में स्वयं और स्वयं में
(अध्याय-6, श्लोक 29)

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥6.29॥

अर्थ:-योगयुक्त अन्तःकरण वाला और सर्वत्र समदर्शी योगी आत्मा को सब भूतों में और भूतमात्र को आत्मा में देखता है।

भावार्थ:-जब आप स्वयं को सभी में और अपने आपमें सभी को देखते हैं तो आपको एकता की महान भावना का अनुभव होने लगता है। फिर आपके सभी और हर किसी के बीच कोई अंतर नहीं रहता। क्या यह शारीरिक, भावनात्मक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिकता के सभी स्तर पर संभव है? बिल्कुल संभव है, जब आप सभी के सामने खड़े होते हैं तो आप वास्तव में सभी की आँखों में दिखाई देते हैं और आपकी आँखों में भी सभी प्रतिबिंबित होते हैं। इस प्रकार आप सभी में हैं और सभी आप में हैं। आप लोगों के बारे में जैसी भावना रखते हैं तो वे आपके मन में होंगे और आप उनके मन में रहते हैं और जब आप नज़दीकी और परिजनों के बारे में सोचते रहते हैं और उनकी देखभाल करते हैं तो वह आपके विचारों में होंगे और एक ज़बरदस्त प्रतिक्रिया के रूप में आप उनके विचारों में होंगे। जब आप, आप से जुड़े सभी लोगों से प्यार और सेवा करते हैं तो वे हमेशा आपके दिल में रहते हैं और आप निश्चित रूप से अपने प्यार और सेवा के कारण उनके दिल में होंगे। इस प्रकार आप और वह सभी पारस्परिक रूप से अमर हैं। एक हैं। देखें, महसूस करें, ध्यान करें, सभी की सेवा करें और वह आपकी आँखों, मन, विचारों और दिलों में रहेंगे। लोगों के दिल में रहें और अमर बनें। लोगों को अपने दिल में रखें और उन्हें अमर बनाएँ।

□

पाठ-7.2
सबमें एक
(अध्याय-6, श्लोक 31)

**सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥6.31॥**

अर्थः—जो पुरुष एकत्वभाव में स्थित हुआ सम्पूर्ण भूतों में स्थित मुझे भजता है वह योगी सब प्रकार से वर्तता हुआ (रहता हुआ) मुझमें स्थित रहता है।

भावार्थः—आत्मा सभी में रह रही है। वह मुझमें आपमें, सबमें और हर कोई में है। यह एक निर्दोष चेतना है, जो मनुष्यों एवं सभी जीवित प्राणियों में मौजूद है। जो भी जानता है, इसे समझता है, अनुभव करता है, वह आत्मीय होकर एक हो जाता है। आत्मा आप, सब और हर किसी के रूप में हमेशा के लिए रहता है। यद्यपि यह हमारे अंदर स्थिर और अचल है। फिर भी वह सब जगह फैली है। हर जगह और हर किसी में है। यह एकता का एक रूप है जो हर कोई को सम्मिलित करता है और इस प्रकार एक सभी हैं और सभी एक हैं।

□

पाठ-7.3
आप सब हैं
(अध्याय-6, श्लोक 32)

**आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥6.32॥**

अर्थः—हे अर्जुन, जो पुरुष अपने समान सर्वत्र सम देखता है, चाहे वह सुख हो या दुःख वह परमयोगी माना गया है।

भावार्थः—एक सब हैं और सब एक हैं। इसको आप समय में समकालीनता, प्यार के साथ सद्भाव, सच्चाई के साथ प्रमाणिक और सहानुभूति एवं जिम्मेदारी के साथ समानता के माध्यम से अनुभव कर सकते हैं। स्वयं के साथ जैसा व्यवहार और सम्मान करते हैं, ऐसा सभी के साथ व्यवहार और सम्मान करें। जब आप इस तरह की सहानुभूति, समता और समानता प्राप्त करते हैं तो आप एक ऐसी स्थिति प्राप्त करेंगे जहाँ सुख और दुख, सफलता और विफलता आपको प्रभावित नहीं करेगी और आप सभी के साथ स्थिरता एवं क्षमता के साथ व्यवहार करेंगे स्थिर और समर्थ रहें, आत्मसम्मान का अनुभव करें और सभी में आत्मसम्मान का वितरण होने दें, सभी का सम्मान करें। सभी का आदर करें, अपने भीतर सभी को महसूस करें।

□

पाठ-7.4
आप सब हैं एक में सभी
(अध्याय-11, श्लोक 13)

**तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकध।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा॥11.13॥**

अर्थः-पाण्डु पुत्र अर्जुन ने उस समय अनेक प्रकार से विभक्त हुए सम्पूर्ण जगत् को देवों के देव श्रीकृष्ण के शरीर में एक स्थान पर स्थित देखा।

भावार्थः-जब आप इच्छा रखते हैं, इरादा रखते हैं, उत्सुक रहते हैं, संघर्ष करते हैं और सबको समाविष्ट करते हैं, तभी आप किसी रूपांतरकारी क्षण में देखेंगे कि मुझमें, आपमें और सभी के भीतर वो एक सर्वव्यापी सर्वोच्च परम दिव्यता मौजूद है। आपको बस खुद को खोलना है। अपनी आँखें बंद करें। अपने अहंकार को हटायें। अपनी आन्तरिक आत्मा को स्पर्श करें और सर्वश्रेष्ठ बनें। सबके प्रति खुले, साफ दिल रहें और एकता का अनुभव करें।



पाठ-7.5

सर्व व्यापक एक

(अध्याय-13, श्लोक 14, 15, 16, 17)

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥13.14॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥13.15॥
बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥13.16॥
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥13.17॥

अर्थः—वह सब ओर हाथ पैर वाला है और सब ओर से नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर से श्रोत्र वाला है। वह जगत् में सबको व्याप्त करके स्थित है। वह समस्त इन्द्रियों के गुणों (कार्यों) के द्वारा प्रकाशित होने वाला, परन्तु (वस्तुतः) समस्त इन्द्रियों से रहित है। आसक्तिरहित तथा गुणरहित होते हुए भी सबको धारण—पोषण करने वाला और गुणों का भोक्ता है। (वह ब्रह्म) भूत मात्र के अन्तर्बाह्य स्थित है। वह चर है और अचर भी। सूक्ष्म होने से वह अविज्ञेय है। वह सुदूर और अत्यन्त समीपस्थ भी है। और वह अविभक्त है, तथापि वह भूतों में विभक्त के समान स्थित है। वह ज्ञेय ब्रह्म भूतमात्र का भर्ता, संहारकर्ता और उत्पत्ति कर्ता है।

भावार्थः—जैसे अपने शरीर के हाथ, पैर, आँखें, सिर, चेहरे और कान पहले से ही जुड़े हुए हैं। एकत्रित हैं और एकजुट हैं यद्यपि ये अलग—अलग रूप में दिखाई देते हैं, पर उपस्थित और अविभाजित एक हैं। वहाँ कोई तुम और मैं, तुम्हारा और मेरा, हम और वे नहीं हैं। ये समझने के पश्चात् आप जगत् में वास्तविकता और सच्चाई का अनुभव करेंगे एवं उसकी व्याख्या एवं अभिव्यक्ति से सम्पूर्ण मानव समाज के लिये संदेशवाहक बन सकते हैं। किसी

तनावरहित जीवने का रहस्य :: 65

भी और सभी के बीच कोई विभाजन, खण्ड, दीवारें और सीमाएँ नहीं हों। तभी कोई युद्ध नहीं, कोई जीत या हार नहीं। और सबकी विजय होती है। लोगों के बीच की सीमा, दीवार और विभाजन तोड़ें। एक बनें। नेक बनें।



पाठ-7.6
ज्योतियों की ज्योति
(अध्याय-13, श्लोक 18)

**ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥13.18॥**

अर्थ:-(वह ब्रह्म) ज्योतियों की भी ज्योति और (अज्ञान) अन्धकार से परे कहा जाता है। वह ज्ञान (चैतन्य स्वरूप) ज्ञेय और ज्ञान के द्वारा जानने योग्य (ज्ञानगम्य) है। वह सभी के हृदय में स्थित है।

भावार्थ:-जब आप एक हैं और आप सभी हैं तो आप प्रेमपूर्ण जीवन जीने के माध्यम से दिव्यता की ज्योति बन जाते हैं। आपके लिए यह ज्योति की ज्योति अज्ञान के अँधेरे को दूर करेगी और अहंकार के 'मैं' को खत्म करेगी। जब आप पूरी तरह अहंकार शून्य होते हैं तो आप आत्मचेतना हैं और आप वो हैं जो निश्चित रूप से उस अद्भुत और ज्ञान का लक्ष्य है। इस ज्ञान को प्राप्त कर आप अमृत प्रकाश की ओर अग्रसित होते हैं। अन्त में आप स्वयं अमृत प्रकाश बन जाते हैं।

□

पाठ-7.7
अविभाजित एक
(अध्याय-18, श्लोक 20)

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्॥18.20॥

अर्थः—जिस ज्ञान से मनुष्य, विभक्त रूप में स्थित समस्त भूतों में एक अविभक्त और अविनाशी (अव्यय) स्वरूप को देखता है, उस ज्ञान को तुम सात्त्विक जानो।

भावार्थः—जैसे कि एक सबकुछ है और सब एक है। यद्यपि जीवित प्राणियों, मनुष्यों और वास्तव में सभी चीजें अलग-अलग दिखाई देती हैं। लोग उन्हें अलग-अलग महसूस करते हैं और सोचते हैं। किंतु जब आपकी सभी समझ और सोच शुद्ध, सौम्य, महान और उत्साहित हो जाती है, तब आप देखते हैं, महसूस करते हैं, सोचते हैं और अनुभव करते हैं कि सभी अविभाजित हैं एवं एकात्म हैं।

□

पाठ-8.1
प्रेम और सीखना
(अध्याय-10, श्लोक 1)

श्री भगवानुवाच

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया॥10.1॥

अर्थः—श्री भगवान् ने कहा—हे महाबाहो, पुनः तुम मेरे परम वचनों का श्रवण करो, जो मैं तुझ अतिशय प्रेम रखने वाले के लिये हित की इच्छा से कहूँगा।

भावार्थः—एक शिक्षार्थी के रूप में जब आप पूरे रस और ध्यान से किसी गुरु को मिलते हैं तो उसके हृदय में से प्रेम बहने लगता है और वह आपके कल्याण के लिए परम उपकारक शब्द और गहन रहस्य बताने लगते हैं। जब आप किसी अन्य व्यक्ति को भी पूरे आदर एवं श्रद्धा से मिलते हैं तो उसके हृदय में बसा हुआ शिक्षक उभर आता है। प्रेम का सही अर्थ है लोगों को वो जैसे हैं वैसे ही स्वीकार करना और उनको उच्चतर होने में सहायता और प्रोत्साहन देना है। श्रद्धा से प्रेम उत्तरोत्तर अर्जित किया जा सकता है।

□

पाठ-8.2
प्रेम और भक्ति
(अध्याय-12, श्लोक 14)

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥12.14॥

अर्थः—जो संयतात्मा, दृढनिश्चयी योगी सदा सन्तुष्ट है, जो अपने मन और बुद्धि को मुझमें अर्पण किये हुए है, जो ऐसा मेरा भक्त है, वह मुझे प्रिय है।

भावार्थः—जब आप भक्त बनकर धैर्य सहित अपने गुरु से मन, बुद्धि और आत्मा से एकाग्रचित्त होकर सीखते हैं, तब आप गुरु को प्रिय हो जाते हैं और उनके प्रेम पात्र बनते हैं। अपने मन, बुद्धि व आत्मा को अर्पण करें और अपार प्रेम पायें। सदा समर्पित और सुखी रहें।

पाठ 8.3
प्रेम पसंद-नापसंद से परे
(अध्याय-12, श्लोक 15)

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥12.15॥

अर्थः—जिससे कोई लोक (अर्थात् जीव, व्यक्ति) उद्वेग को प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी व्यक्ति से उद्वेग अनुभव नहीं करता तथा जो हर्ष, अमर्ष (असहिष्णुता) भय और उद्वेगों से मुक्त है, वह भक्त मुझे प्रिय है।

भावार्थः—जब आपको किसी से भय नहीं होता, किसी को आपसे भय नहीं होता और आपका चित्त अचल होता है, चाहना ना चाहना, मेरा और उनका, प्रशंसा और निंदा इत्यादि से परे रहता है, तब आप सबके प्रिय और प्रेम पात्र बनते हैं। जो सही है उनसे प्रेम करें, न कि जो बस आपको पसंद है, उसको ही प्रेम करें।

□

पाठ-8.4
प्रेम और निस्वार्थभाव
(अध्याय-12, श्लोक 16)

**अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥12.16॥**

अर्थः—जो अपेक्षारहित, शुद्ध, दक्ष, उदासीन, व्यथारहित और सर्वकर्मों का संन्यास करने वाला मेरा भक्त है, वह मुझे प्रिय है।

भावार्थः—जब आप किसी अपेक्षा के बिना मन व बुद्धि से निर्मल व पवित्र हैं। कौशलपूर्ण व सक्षम हैं और जब आप संकट की परिस्थितियों में तनाव व खिंचाव के बिना स्थिर रहते हैं, जब आप हर कार्य के आरंभ से ही स्वार्थ एवं मतलब से परे होते हैं। तब आप सबके प्रेमपात्र बन जाते हैं। निस्वार्थ रहें और प्रेम पात्र बनें।

पाठ-8.5
द्वेषरहित प्रेम
(अध्याय-12, श्लोक 17)

**यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥12.17॥**

अर्थः—जो न हर्षित होता है और न द्वेष करता है। न शोक करता है और न आकांक्षा तथा जो शुभ और अशुभ को त्याग देता है, वह भक्तिमान पुरुष मुझे प्रिय है।

भावार्थः—दो लोगों के बीच अगर द्वेष है तो वह संघर्ष की स्थिति है। द्वेष त्यागकर प्रेम करना ही सही है। प्रेम ही युद्ध से शांति के प्रति जीने का एकमात्र मार्ग है। जब आप नफरत, निराशा और विकृति का त्याग करते हैं, कोई भी लालसा नहीं रखते, यही प्रेम का सच्चा मार्ग है।

□

तनावरहित जीवन जीने का रहस्य :: 71

पाठ-8.6
प्रेम और सम्पूर्ण स्वीकार
(अध्याय-12, श्लोक 18)

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥12.18॥

अर्थः—जो शत्रु और मित्र में तथा मान अपमान में सम है और शीतउष्ण (अनुकूलता प्रतिकूलता) तथा सुख—दुःख में सम है एवं आसक्ति से रहित है, और जो निन्दा स्तुति को समान समझने वाला, मननशील, जिस किसी प्रकार से भी (शरीर का निर्वाह होने में) संतुष्ट, रहने के स्थान तथा शरीर में ममता आसक्ति से रहित और स्थिर बुद्धिवाला है, वह भक्तिमान् मनुष्य मुझे प्रिय है।

भावार्थः—मित्र को प्रेम करें। शत्रु को भी प्रेम करें। आदर देने वालों को प्रेम करें। अनादर करने वालों को भी प्रेम करें। निन्दा करने वालों को भी प्रेम करें। आपको नीचा दिखाने वालों को भी प्रेम करें। किसी से भी अलगाव नहीं रखते हुए सभी से प्रेम करें और परिणामस्वरूप सब ओर से प्रेम प्राप्त करें। याद रखें, प्रेम स्वीकार है। शत्रु एवं मित्र दोनों को एक जैसे ही स्वीकार करें। उनकी उन्नति के लिए शत्रुता को मित्रता में परिवर्तित करने के लिए प्रयास कर सामान्य मित्रों को सहृदय बनाने के लिए प्रयत्नशील रहें।

□

पाठ-8.7
प्रेम कीर्ति-अपकीर्ति के पार
(अध्याय-12, श्लोक 19)

तुल्यनिन्दास्तुतिमौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥12.19॥

अर्थः—जिसको निन्दा और स्तुति दोनों ही तुल्य है, जो मौनी है, जो किसी अल्प वस्तु से भी सन्तुष्ट है, जो अनिकेत है, वह स्थिर बुद्धि का भक्तिमान पुरुष मुझे प्रिय है।

भावार्थः—निन्दा एवं स्तुति से कभी भी प्रभावित नहीं होना। यह दोनों नकली और झूठे हैं। जो भी आपको मिला है उससे संतुष्ट रहें। सबकी भलाई के लिए उसमें सुधार व उसका सही उपयोग करना सीखें। कोई एक स्थान विशेष करके ओहदा या पद पर चिपके न रहें। किसी भी स्थिति—परिस्थिति में संयमित रहें। सभी स्थानों को प्यार से भर दीजिए। कीर्ति और अपकीर्ति के परे प्रेम की ज्योति जलाते रहें।

□

पाठ-8.8
प्रेम का अमर मार्ग
(अध्याय-12, श्लोक 20)

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्धधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥12.20॥

अर्थः—जो भक्त श्रद्धावान तथा मुझे ही परम लक्ष्य समझने वाले हैं और इस यथोक्त धर्ममय अमृत का अर्थात् धर्ममय जीवन का पालन करते हैं, वे मुझे अतिशय प्रिय हैं।

भावार्थः—प्रेम और भक्ति का अमर मार्ग अपनाइये। परमात्मा सदा भक्तों के हृदय में बसते हैं। भक्त सदा प्रेमवान हृदय में निवास करते हैं। प्रेम वर्षा समान है। भक्ति अंकुर समान। प्रेम का समर्पण, भक्ति का स्वीकार, भक्ति का समर्पण, प्रेम का स्वीकार।



पाठ-8.10
असीम प्रेम
(अध्याय-8, श्लोक 10)

**प्रयाणकाले मनसा अचलेन भक्त्या युक्तः योगबलेन च एव भ्रुवोः।
मध्ये प्राणम् आवेश्य सम्यक् सः तम् परम् पुरुषम् उपैति दिव्यम्॥8.10॥**

अर्थः-(सः) वह (भक्त्या, युक्तः) भक्ति युक्त साधक (प्रयाण काले) अन्तकाल में (योग बलेन) नाम के जाप की भक्ति के प्रभाव से (भ्रुवोः) भृकुटी के (मध्ये) मध्य में (प्राणम्) प्राण को (सम्यक्) अच्छी प्रकार (आवेश्य) स्थापित करके (च) फिर (अचलेन) निश्चल (मनसा) मनसे (तम्) अज्ञात (दिव्यम्) दिव्य रूप (परम्) परम (पुरुषम्) भगवान को (एव) ही (उपैति) प्राप्त होता है।

भावार्थः-उन सबको पूरे दिल से भक्ति भाव से सहयोग एवं आदर प्रदान करें, जिन्होंने आपका लालन-पालन किया, आपको समर्थ बनाया, आपका ध्यान रखा, आपकी रक्षा की और आपकी क्षमताओं में वृद्धि की है। इससे आप निर्मल बनके दिव्यता प्राप्त करने के लिए विपुल आशीष एवं अलौकिक प्रेम पाएँगे। अपना अर्पण कीजिए और संपूर्ण अपना लीजिए। साथ में होना प्रेम का प्रारम्भ है। क्षमा करो और भूल जाओ। मित्रता प्रेम की नींव है। मित्रता में सब आगे बढ़ते हैं। स्वीकार प्रेम का अनिवार्य अंग है। स्वीकार में कुछ प्रमाणित करना नहीं होता है। संवाद प्रेम की सीमेंट है। वियोग प्रेम का रहस्य है। वियोग में प्रेम दृढ़ होता है। स्वार्थ प्रेम का शत्रु है। प्रेम में तो देना, देना और देना ही है। विश्वास प्रेम का आधार है। अनंत विश्वास प्रेम की परवरिश करता है। संवादिता और प्रसन्नता प्रेम का परिणाम है। दो आत्मायें तभी एक होकर रहती हैं जब वह निस्वार्थ रूप से प्रेममय हैं।

□

तनावरहित जीवन जीने का रहस्य :: 75

खुशी, पसंद-नापसंद के पार
(अध्याय-2, श्लोक 64)

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् वियुक्तैस्तु।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥2.64॥

अर्थ:-वशीभूत अन्तःकरण वाला कर्म योगी साधक रागद्वेष से रहित अपने वश में की हुई इन्द्रियों द्वारा विषयों का सेवन करता हुआ अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त हो जाता है। प्रसन्नता प्राप्त होने पर साधक के सम्पूर्ण दुःखों का नाश हो जाता है और ऐसे प्रसन्न चित्त वाले साधक की बुद्धि निःसन्देह बहुत जल्दी परमात्मा में स्थिर हो जाती है।

भावार्थ:-जब आप पसंद-नापसंद के परे होते हैं, जब आपकी इन्द्रियाँ आपके बस में होती हैं और जब आप मन को खींचतान करने वाले विषय से परे हटाओगे तब आपको खुशी व शांति अवश्य मिलती है। आप जो सुनते हैं, स्पर्श करते हैं, देखते हैं, चखते हैं और सूंघते हैं, उसकी वजह से खींचतान महसूस करते हैं। उससे अपने आपको संयमित करें, जो कुछ भी शुभ है, उसको ही सुनने, स्पर्श करने देखने, चखने और सूंघने के लिए अपने चित्त को प्रशिक्षित करें। हकीकत में आप अपनी इन्द्रियों को एकांत में सुनने, हृदय को स्पर्श करने, अवसरों को देखने, उत्कृष्टता को चखने एवं उपायों को सूंघने के लिए अपनी इन्द्रियों को रूपान्तरित कर सकते हैं। पसंद-नापसंद से परे रहकर जो उचित है उसको अपनाने से और अनुचित से बचने से आप खुशी और शांति प्राप्त करेंगे। आपको कुछ पसंद है या नापसंद है, उसका महत्व नहीं है। बल्कि क्या उचित है या अनुचित है, उसका महत्व है।

□

पाठ-9.2
सन्तुष्टि के साथ खुशी
(अध्याय-4, श्लोक 22)

**यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥4.22॥**

अर्थः—यदृच्छया (अपने आप) जो कुछ प्राप्त हो उसमें ही सन्तुष्ट रहने वाला द्वन्द्वों से अतीत तथा मत्सर से रहित सिद्धि व असिद्धि में समभाव वाला पुरुष कर्म करके भी नहीं बन्धता है।

भावार्थः—वही व्यक्ति मुक्त और सुखी है जिसे जो कुछ भी मिलता है, उससे संतुष्ट है। पसंद—नापसंद से परे है। दूसरों के प्रति आक्रामक नहीं है और सफलता या विफलता से प्रभावित नहीं होता है। जो कुछ भी आपको सहज मिलता है और तन, मन व बुद्धि के श्रम करने के पश्चात् जो प्राप्त है उससे खुश रहें, आपको जो दिया गया है, आपको जो मिला, वह आपका है। आपको जो नहीं मिला या नहीं दिया गया उसके लिए तरसे नहीं। जो नहीं मिला है उसकी चिंता करने में शक्ति और समय नष्ट न करें। कुछ भी, कहाँ भी, कभी भी, कोई भी, कैसे भी, क्यों नहीं मिला, ऐसा सोचकर परेशान या दुःखी नहीं होना। बस खुश रहें।

□

पाठ-9.3
आवेगों से दूर रहने से खुशी
(अध्याय-5, श्लोक 23)

**शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥5.23॥**

अर्थः-जो मनुष्य इसी लोक में शरीर त्यागने के पूर्व ही काम और क्रोध से उत्पन्न हुए वेग को सहन करने में समर्थ है वह योगी (युक्त) और सुखी मनुष्य है।

भावार्थः-इच्छाएँ मनुष्य को उनकी पूर्ति की दिशा में खींचती हैं। परिणामस्वरूप इच्छित को पकड़ने के लिए मनुष्य अधिक गति से भागता है। अगर आप ऐसी इच्छा पूर्ति के लिए प्रतिक्रियाएँ व आवेगों से दूर रह सकते हैं तो इच्छा तृप्ति के मार्ग में आने वाली अप्रिय घटनाएँ और नुकसान से बच सकते हैं। आप जब जल्दबाजी और प्रतिक्रियाओं से बचते हैं तो उनका दुख पैदा करने वाला प्रभाव टल सकता है। परिस्थितियों से अनुकूल होकर और आवेगों की प्रतिक्रियाओं को टालकर आप खुशी एवं आनंद पा सकते हैं।

□

पाठ-9.4
आंतरिक खुशी
(अध्याय-5, श्लोक 24)

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥5.24॥

अर्थः—जो पुरुष अन्तरात्मा में ही सुख वाला आत्मा में ही आराम वाला तथा आत्मा में ही ज्ञान वाला है वह योगी ब्रह्मरूप बनकर ब्रह्मनिर्वाण अर्थात् परम मोक्ष को प्राप्त होता है।

भावार्थः—अपने आपमें खुश रहें और अपने अंतर्मन में खुश रहें। आप ऐसा तभी कर सकते हैं जब आप बाहर से अनुमति और सराहना खोजते नहीं। अपने आपमें मन में समझ की आंतरिक जगमगाती हुई जोत बनें। आप अति आनंद और परम सुख का अपने आप अनुभव करेंगे। निरंतर, अभ्यास और चिंतन से यह प्राप्त हो सकता है। आप वो बनते हैं जो आप सोचते हैं।

□

पाठ-9.5
खुशी के लिए आहार
(अध्याय-17, श्लोक 8)

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।

रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥17.8॥

अर्थः—आयु, सत्त्व (शुद्धि), बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को प्रवृद्ध करने वाले एवं रसयुक्त, स्निग्ध (घी आदि की चिकनाई से युक्त) स्थिर तथा मन को प्रसन्न करने वाले आहार अर्थात् भोज्य पदार्थ सात्त्विक पुरुषों को प्रिय होते हैं।

भावार्थः—सबके लिए पोषण और ऊर्जा का स्रोत आहार है। आहार जीने के लिए आवश्यक है। इसीलिए व्यक्ति को जीने के लिए खाना चाहिए। खाने के लिए जीना नहीं। सादा और पौष्टिक भोजन (आहार) वह भी आवश्यक मात्रा में आपका मित्र है जो आपको स्वस्थ और सुखी रखता है। जटिल, आरोग्य, नशाकारक और अधिक मात्रा में भोजन आपका शत्रु है। उचित व आवश्यक मात्रा में सादा व पौष्टिक भोजन लेने की आदत डालें। शुद्ध व पौष्टिक आहार खुशी का निश्चित मार्ग है।



पाठ-9.6
खुशी का पुनः स्मरण
(अध्याय-18, श्लोक 76)

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः॥18.76॥

अर्थः—हे राजन्, भगवान् केशव और अर्जुन के इस अद्भुत और पुण्य (पवित्र) संवाद को स्मरण करके मैं बारम्बार हर्षित होता हूँ।

भावार्थः—भूतकाल की उत्तम अनुभूतियाँ एवं आनंद के क्षणों को स्मरण करने से वर्तमान में वही आनंद और खुशी का निर्माण करता है। इसलिए आपके प्रिय और निकट के व्यक्तियों के प्रफुल्लित संवाद को और आनंद के पलों को बार-बार याद कीजिए। भूतकाल के आनंद के पल वर्तमान के आनंद के स्रोत हैं।



इच्छा

पाठ-10.1 इच्छाएँ अनंत (अध्याय-3, श्लोक 37)

श्री भगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥3.37॥

अर्थ:—श्रीभगवान् ने कहा, रजोगुण में उत्पन्न हुई यह कामना है। यही क्रोध है। यह महाशना (जिसकी भूख बड़ी हो) और महापापी है, इसे ही तुम यहाँ (इस जगत् में) शत्रु जानो।

भावार्थ:—आवश्यकताएँ व इच्छाएँ मानव की वास्तविकता है। आवश्यकताएँ जीने के लिए ज़रूरी है। इच्छाएँ वे हैं जिसकी मनुष्य अधिक से अधिक लालसा करता है और वो भी विकासीता व सहूलियत के लिए। आवश्यकताएँ सीमित होती हैं। इच्छाएँ असीमित। इच्छाएँ गहरे कुएँ की तरह हैं, जो कभी भी पूरी तृप्त नहीं की जा सकतीं। एक इच्छा की पूर्ति होते ही दूसरी इच्छा पैदा होती है और यह चलता ही रहता है। आवश्यकताएँ बीज की तरह हैं। इच्छाएँ जंगली घास की तरह। जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करें। इच्छाओं के घास को उखाड़कर फेंक दें।

□

पाठ-10.2
इच्छा का धुआँ
(अध्याय-3, श्लोक 39)

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च॥3.39॥

अर्थ:-हे कौन्तेय अग्नि के समान जिसको तृप्त करना कठिन है ऐसे कामरूप ज्ञानी के इस नित्य शत्रु द्वारा ज्ञान आवृत है।

भावार्थ:-जैसे धुआँ अग्नि को धुँधला बनाता है, वैसे ही इच्छाएँ मनुष्य की बुद्धि को धुँधला बना देती हैं। इच्छाएँ अति बुद्धिमान या महान ज्ञानी किसी को भी बक्शती नहीं हैं। इस इच्छारूपी शत्रु से आप सावधान रहिए। मन में इच्छा पैदा होते ही सोचिए, विश्लेषण कीजिए। उसकी आवश्यकता है या नहीं। उसका विवेक बुद्धि से निष्कर्ष निकालिए। सरल, सुखी, सौम्य व प्रसन्न जीवन के लिए जितना आवश्यक है, उसे रखें जो कुछ भी अधिक है उसे शरीर के ज़्यादा वज़न या सफ़र के ज़्यादा सामान की तरह बिना हिचकिचाहट के काट दीजिए। इच्छाएँ दूर होते ही आप हल्के, तेजस्वी, स्वस्थ व सुखी व्यक्ति हो जाएँगे। इच्छाओं का त्याग सुखी और उदात्त जीवन प्रदान करता है।

□

पाठ-10.3
इच्छाओं का विसर्जन
(अध्याय-3, श्लोक 40, 41 42)

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्॥3.40॥
तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभा।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥3.41॥
इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥3.42॥

अर्थः—इन्द्रियाँ मन और बुद्धि इसके निवास स्थान कहे जाते हैं, यह काम इनके द्वारा ही ज्ञान को आच्छादित करके देही पुरुष को मोहित करता है। इसलिये हे अर्जुन तुम पहले इन्द्रियों को वश में करके ज्ञान और विज्ञान के नाशक इस कामरूप पापी को नष्ट करो। (शरीर से) परे (श्रेष्ठ) इन्द्रियाँ कही जाती हैं, इन्द्रियों से परे मन है और मन से परे बुद्धि है और जो बुद्धि से भी परे है वह है आत्मा।

भावार्थः—शरीर, मन और बुद्धि के ऊपर इच्छाओं का मैल जमा होता है, बढ़ता है और व्यक्ति को हानि पहुँचाता है। इच्छाएँ व्यक्ति की समझदारी को धुँधला बनाकर उसके पतन की वजह बनती हैं। इसलिए शरीर और मन को सुनियमित व नियंत्रित करना सबके लिए अनिवार्य है। यह स्थिर बुद्धि और विवेक से संभव है। बुद्धि के आवेगों को तर्क से और मन को बुद्धि से नियंत्रित करें। मन इंद्रियों से बढ़कर है। अपनी चैतन्य भक्ति, जागृति, तेजस्वी बुद्धि और समर्थ मन से इच्छा नामक शक्तिशाली शत्रु का विसर्जन करें और उसको निर्मूल करें। इच्छाओं का नाश होते ही आप एक तेजस्वी ज्ञानी की भाँति चमक उठेंगे। स्थिर बुद्धि एवं समर्थ मन से इच्छाओं का विसर्जन कीजिए।

□

पाठ-10.4
आत्म स्वत्व, स्थिर बुद्धि, समर्थ मन
(अध्याय-3, श्लोक 43)

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥3.43॥

अर्थः—इस प्रकार बुद्धि से परे (शुद्ध) आत्मा को जानकर आत्मा (बुद्धि) के द्वारा आत्मा (मन) को वश में करके हे महाबाहो तुम इस दुर्जेय (दुरासदम्) कामरूप शत्रु को मारो।

भावार्थः—स्थिर बुद्धि, समर्थ मन, निर्मल इंद्रियाँ व अंगों से इच्छाएँ और क्रोध को निष्कासित करने की प्रक्रिया ज्ञान—बुद्धि के पार के परम सत्व को पहचान कर अपने आपको स्वयं में स्थित करके इच्छारूपी शत्रु का नाश करें। आत्म शुद्धि के दिव्य सत्व से इच्छा राक्षस का विनाश कीजिए।

□

पाठ-11
सफलता व विफलता
(अध्याय-2, श्लोक 48)

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्धासिद्धोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥2.48॥

अर्थः—हे धनंजय आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समभाव होकर योग में स्थित हुए तुम कर्म करो। यह समभाव ही योग कहलाता है।

भावार्थः—जब भी आप कुछ कार्य करें, शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के एकत्रीकरण से करें। क्रियाओं, भावनाओं, विचार और आपकी चेतना को संकलित करके करें। जब आप जो करते हैं, महसूस करते हैं, सोचते हैं और आप जो हो, ये चारों एक रूप हैं तब आप अपने आपकी आंतरिक शक्ति के श्रेष्ठ परिणाम, सम्बन्ध, असर व बौद्ध प्राप्त करते हैं। कार्य करते समय आपको क्या पसंद और क्या नापसंद है, उससे आप प्रभावित मत होना। कार्य उचित है या नहीं इसके ऊपर ध्यान केंद्रित करें। अटल व सचेत रहें और जो सही है उसका चुनाव करें।

कार्य करते समय ये भी मत सोचिए कि आप सफलता से क्या पाएँगे या विफलता से क्या खोएँगे। अपने कार्य पर एकाग्र रहें। अपना श्रेष्ठ प्रदान करें। जो भी परिणाम आए उसको स्वीकार करें और उसमें और भी क्या सुधार करना चाहिए, उसके बारे में सोचें। हकीकत में सफलता और विफलता दोनों काम के हैं। सफलता आपका आत्मविश्वास बढ़ायेगी, विफलता आपको सिखाएगी। संतुलित रहकर आपको सफलता का फल और विफलता के पुनरावर्तन का परिहार निश्चित करना चाहिए। संतुलित होकर सफलता—विफलता के परे रहने से आप शाश्वत समता पा सकते हैं। संतुलन शांति का मूल है।

□

पाठ-12
स्थिर और समर्थ
(अध्याय-2 , श्लोक 56)

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥2.56॥

अर्थः—दुख में जिसका मन उद्विग्न नहीं होता। सुख में जिसकी स्पृहा निवृत्त हो गयी है, जिसके मन से राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, वह मुनि स्थितप्रज्ञ कहलाता है।

भावार्थः—खुशी और गम ऋतु जैसे हैं, आते—जाते हैं, बदली हुई परिस्थितियों में संतुलित रहना, सिद्ध व्यक्ति का लक्षण है, विफलता की संभावना और वर्तमान में या भविष्य में कुछ हानि होने वाली है, ऐसा मान लेने से भय उत्पन्न होता है, जो अब हुआ है, जिसके बारे में कभी सोचा नहीं था, जो हानिकारक है। वैसा होने से यानि कि आशा भंग से क्रोध उत्पन्न होता है। इसलिए भय और क्रोध की पकड़ में आने के बजाय परिस्थिति को समझकर खुद में हिम्मत जुटाकर आत्मविश्वास के साथ सामना करें और संभावित उपाय ढूँढ़ें। कठिन परिस्थितियों में विचलित होकर जल्दबाजी में कोई कार्यवाही न करें। खुद को निःसहाय मानकर परिस्थिति के सामने घुटने न टेकें। खुद को पीछे न हटाएँ और जब आपके साथ अच्छा घटित हो रहा हो, तब दिखावा न करें। आपका सब अच्छा ईश्वर कृपा और कई लोगों के योगदान से पूरा हो रहा है। न कि आपके अकेले से। नम्रता के साथ सुख की स्थिति को स्वीकार करें। आन्तरिक या बाह्य कौसी भी स्थिति से, सब लगाव छोड़ने से भय और क्रोध को पार करने में और भावनात्मक संतुलन टिकाने में सहायता मिलती है। चित्त में स्थिर कार्य में समर्थ रहना मानसिक संतुलन की चाबी है। कौशल्य आपको समर्थ बनाता है। संकल्प आपको स्थिर बनाता है। कौशल्यवान और संकल्पवान बनिए।

□

तनावरहित जीवन जीने का रहस्य :: 87

पाठ-13
समानता
(अध्याय-5, श्लोक 18)

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥5.18॥

अर्थः-(ऐसे वे) ज्ञानीजन विद्या और विनय से सम्पन्न ब्राह्मण तथा गाय, हाथी, श्वान और चाण्डाल में भी सम तत्त्व को देखते हैं।

भावार्थः-समदृष्टा व शुद्ध उद्धात व्यक्ति बनिए। जाति, भाषा, सम्प्रदाय व प्रांत के आधार पर लोगों में भेद न करें। जिसके भी साथ जुड़ना हो उन सबके साथ एक-सा ध्यान, आदर, समता से व्यवहार कीजिए। समानता एकरूपता नहीं है। सबको एक मापदंड से नापना समानता है। अपनी-अपनी आवश्यकताओं और योगदान के मुताबिक सबके साथ व्यवहार कीजिए। प्रतिफल दीजिए। अपना संबंध धनाड्य और दरिद्र, शिक्षित व अशिक्षित, पसंद व नापसंद एवं बलवान व कमजोर के साथ एक समान हो, तब आप सन्तुलन के स्वामी हैं। समानता से व्यवहार करें। पात्रता के आधार पर व्यवहार करें। समानता उच्च गुण है।

□

पाठ-14
सुख और दुख में संतुलन
(अध्याय-14 , श्लोक 24)

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥14.24॥

अर्थः—जो स्वस्थ (स्वरूप में स्थित), सुख—दुख में समान रहता है तथा मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण में समदृष्टि रखता है ऐसा वीर पुरुष प्रिय और अप्रिय को तथा निन्दा और आत्मस्तुति को तुल्य समझता है।

भावार्थः—सुख और दुख से प्रभावित हुए बिना संतुलित रहें। जब अच्छा घटित होता है तो उत्तेजना से उछलें नहीं और जब कुछ बुरा घटित होता है तो उदास मत होइए। स्थिति के ऊपर—नीचे होने के साथ आप ऊपर—नीचे मत होइए। यदि आप मानसिक रूप से भावनात्मक स्तर पर ऊँचा—नीचा महसूस करते हैं, आप परिस्थितियों से नियन्त्रित हो जाते हैं। अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और चेतना शक्ति को ऐसे प्रयोग में लाएँ कि जब अच्छा होता है तो उसे और बेहतर करने का प्रयास हो और जब अच्छा नहीं होता है तो किन कारणों से ऐसा हुआ है, वो ढूँँहें। कारणों को दूर करें और उनमें सुधार करें। सुख और दुख दोनों को स्वीकार करके संतुलित रहें। सुख—दुख दोनों को आनंद में परिवर्तित करें व अपनी चेतना को शाश्वत बनाएँ।

□

पाठ-15
मान अपमान से परे
(अध्याय-14, श्लोक 25)

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्ररिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥14.25॥

अर्थः—जो मान और अपमान में सम है शत्रु और मित्र के पक्ष में भी सम है, ऐसा सर्वारम्भ परित्यागी पुरुष गुणातीत कहा जाता है।

भावार्थः—आपको मान मिले या अपमान, उससे आप विचलित मत होना। क्योंकि वो कुछ ही समय में बदल सकते हैं। हँसते—खेलते उसको झेलिये। मान—अपमान क्या है और लोग आपको क्या समझते हैं, उसके ऊपर आधारित है। खुद की वास्तविकता के बारे में और लोगों की समझ के बारे में सोचिए। अपने चिंतन—मनन से आपको लगता है कि आप माननीय हैं, तो ये समझते ही रहें, ऐसी अपनी उत्कृष्टता और योदगान में बढ़ोत्तरी करके सुनिश्चित करें। यदि आपको लगता है कि आप कम माननीय हैं, अपनी अपूर्णता के क्षेत्र में सुधार करके माननीय बनने के लिए खुद में सुधार लायें। आपको अगर पता लगता है कि आप सचमुच में माननीय हैं, लेकिन आपके बारे में लोगों की समझ अपूर्ण है तो आप अपनी कार्यक्षमता, योगदान, संचार, अनपेक्षित सेवा और समझ से उनकी समझ में बदलाव लाएँ। वैसे भी कोई मित्र या शत्रु स्थाई नहीं होता। शत्रु मित्र हो जाते हैं और मित्र शत्रु। आप शत्रु व मित्र के साथ सच्चे आदर व मान के साथ व्यवहार करते हैं तो आपका कोई शत्रु नहीं होगा। शत्रु को सहाय, आधार और सेवा देने के अवसर की प्रतीक्षा कीजिए। शत्रुता भाप बनकर उड़ जाएगी। महत्वपूर्ण बात यह है कि सब कार्य और संबंध के आरंभ में आप अपेक्षारहित रहें। इससे कुछ भी नहीं होने से मायूसी नहीं होगी। लोगों को अपेक्षा के बिना स्वीकार करें। शत्रु की सेवा करें, मित्रता के पात्र बनें।

□

सीखने का रवैया

पाठ-16.1

सीखने की अभिवृत्ति, ज्ञान की धार

(अध्याय-4, श्लोक 38)

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥4.38॥

अर्थ:-इस लोक में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निसंदेह कुछ भी नहीं है। योग में संसिद्ध पुरुष स्वयं ही उसे (उचित) काल में आत्मा में प्राप्त करता है।

भावार्थ:-ज्ञान से अधिक पावन कुछ नहीं है। ज्ञान ऐसी धार है जिससे सब संशय को छेदा जा सकता है और निर्मल बना जा सकता है। ज्ञान वह अग्नि है जो व्यक्ति की सब अशुद्धियाँ, कमियाँ, हिचकिचाहट, ग़लतफहमी और डर जला देती है। सच्चा ज्ञान, शिक्षा, जानकारी, विचार और उपाय सही की प्रसिद्धि और प्रज्ञा है। शिक्षा भूतकाल है। मोहिती वर्तमान है। विचार भविष्य के लिए है और उपाय शाश्वत है। इसलिए भूतकाल को जानकर वर्तमान से रूबरू रहें। भविष्य के लिए विचार रचें और शाश्वत उपाय का पता लगाएँ। त्रिकालदर्शी बनिये। भूत, वर्तमान और भविष्य के स्वामी बनिये। इससे उपयुक्त समय में अपने अन्दर की असीमित एवं आंतरिक शक्ति को आप पूर्णतया जान पाएँगे। ज्ञान की धार इस्तेमाल करें और समझदारी के स्वामी बनें।

□

पाठ-16.2
श्रद्धा और ज्ञान
(अध्याय-4, श्लोक 39)

**श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥4.39॥**

अर्थः—श्रद्धावान तत्पर और जितेन्द्रिय पुरुष ज्ञान प्राप्त करता है। ज्ञान को प्राप्त करके शीघ्र ही वह परम शान्ति को प्राप्त होता है।

भावार्थः—श्रद्धावान को ज्ञान और प्रज्ञा प्राप्त होते हैं। व्यक्ति को श्रद्धावान शिक्षार्थी बनना चाहिए। श्रद्धा में प्रतिबद्धता, अभ्यास व ज्ञान का समाविष्ट है। प्रतिबद्धता का मतलब है, आप वही कहते हैं जो करते हैं और वही आप करते हैं जो कहते हैं। आप वही महसूस करते हैं जो कहते हैं और वही कहते हैं जो महसूस करते हैं और आप वही सोचते हैं जो आप कहते हैं और वही कहते हैं जो आप सोचते हैं। इससे आप श्रद्धावान और प्रमाणिक बनते हैं। परिणाम के रूप में शिक्षक अपना श्रेष्ठ प्रदान करते हैं और उनका दिया ज्ञान आप शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक तीनों स्तर पर ग्रहण करते हैं। श्रद्धावान शिक्षार्थी होने के लिए आपको अपनी इंद्रियों को नियंत्रित करने का निश्चय करना होता है। जो देखते हैं, सुनते हैं, स्पर्श करते हैं, सूंघते और चखते हैं, उससे सीखें और अपनी इंद्रियों की क्षमता को परिवर्तित करें। नहीं बोले गए शब्दों को सुनें। आपसे संबंधित सभी के हृदय को स्पर्श कीजिए। दृष्टिमान के पार देखिए। उत्कृष्टता को चखिये। अवसरों की और समस्याओं की गन्ध लीजिए। ऐसा ज्ञान एवं समझ आप प्राप्त करेंगे तब आप आत्मनिर्भर और शांतिपूर्ण हो जाएँगे और पूर्ण प्रशांति का अनुभव करेंगे। श्रद्धावान शिक्षार्थी बनें।

□

पाठ-16.3
निरंतर शिक्षण
(अध्याय-4, श्लोक 34)

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥4.34॥

अर्थः—उस (ज्ञान) को (गुरु के समीप जाकर) साष्टांग प्रणिपात प्रश्न तथा सेवा करके जानो ये तत्त्वदर्शी ज्ञानी पुरुष तुम्हें ज्ञान का उपदेश करेंगे।

भावार्थः—जीवन पर्यन्त अविरत शिक्षार्थी रहें। क्योंकि सिखाने का अन्त है, सीखने का नहीं। आदर प्राप्त गुरु से सीखना बहुत अच्छा है। स्वयं शिक्षण उत्तम है। गुरु शिक्षण सर्वोत्तम। सीखने के लिए तीन गुण आवश्यक हैं—गुरु को आदर देना, सेवा करना और विनम्र सवाल पूछना। गुरु का आदर करना अत्यंत आवश्यक है। जब आप गुरु का पूज्य-भाव से आदर और सम्मान करते हैं तो वह प्रेरित होते हैं। उनकी आंतरिक दिव्यता व्यक्त होती है और शिक्षण ग्रहण और प्रेरित होता है। जब आप प्रश्न करते हैं और सही प्रश्न पूछते हैं तो गुरु आपको तीक्ष्ण गुण—रहस्य बतलाते हैं। श्रद्धा और भक्तिपूर्वक सीखने का जीवन में अमल करने और उनसे सीखे ज्ञान को दूसरों में फैलाने की जब आप सेवा करते हैं तो गुरु तृप्ति का अनुभव करते हैं और आपको आशीष व प्रगाढ़ ज्ञान का लाभ देते हैं। ज्ञान अनुभव व संचार क्षमता वाले गुरुओं को खोजने के लिए उत्साहशील रहें। बिना अनुभव का ज्ञान केवल तैयारी है और बिना ज्ञान का अनुभव उथला होता है। ज्ञान और अनुभव का जोड़ ही पूरी समझ है, संचार, क्षमता ज्ञान देने की कुशलता है। शिक्षार्थी सिखाया गया सीख जाता है, तब सम्पूर्ण संचार है। जो सिखाया गया है, उसको पूर्णतया समझकर आप महान शिक्षार्थी बन सकते हैं। सीखने के लिए विनम्र और विनयशील होना आवश्यक है। सीखने के लिए नम्र बनें, स्वीकार करें, अभ्यास और सुधार करें।

□

तनावरहित जीवने का रहस्य :: 93

पाठ-17
प्रज्ञा
(अध्याय-7, श्लोक 7)

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥7.7॥

अर्थः—हे धनंजय! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत सूत्र में सूत्र के मणियों के सदृश मुझमें गुँथा हुआ है।

भावार्थः—चीजों का सार देखना और अदृश्यमान को देखना प्रज्ञा है। आप जब फूलों की माला या गुच्छा देखते हैं तब फूल देखते हैं, सुंदरता देखते हैं, बहुसुगन्धित महक महसूस करते हैं। किन्तु सोचिए कम कीमत वाले फूलों का समूह बहुमूल्यवान माला कैसे बन गया। अदृश्य, पवित्र अमूल्य धागे की वजह से, जिसके ऊपर माला बनने के लिए फूलों को बाँधा गया है। धागा मूल तत्व है। धागे के बिना बहुसुगन्धित माला का अस्तित्व नहीं है और फूलों का ऊँचा मूल्य नहीं। यह धागा अदृश्यमान को देखने वाली प्रज्ञा है। इसलिए माला में धागे की तरह ज्ञानी व्यक्ति बनें। व्यक्ति को उपयोगी व समाज को मूल्यवान बनाने के लिए एक करें। जोड़कर एक करें, संकलित करें एवं प्रज्ञा का प्रचार करें।



पाठ-18
स्वयं सुधर एवं स्वाध्याय
(अध्याय-6 , श्लोक 5)

**उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥6.5॥**

अर्थः—मनुष्य को अपने द्वारा अपना उद्धार करना चाहिये और अपना अधो पतन नहीं करना चाहिये। क्योंकि आत्मा ही आत्मा का मित्र है और आत्मा (मनुष्य स्वयं) ही आत्मा का (अपना) शत्रु है।

भावार्थः—सीखने वाले का श्रेष्ठ मित्र, मार्गदर्शक और समर्थक स्वयं खुद है। 'स्व' निर्भरता सफलता का उचित मार्ग है। आपको आत्मविश्वास से अपने ही प्रयासों से अपने आपको सुधारना है। शिक्षकगण और अन्य लोग केवल मार्गदर्शन और योगदान दे सकते हैं। खुद का उत्तम सखा आप खुद हैं। स्वयं प्रारंभ, स्वयं सिद्ध, आत्मविश्वास, स्वयं प्रेरणा, स्वाध्याय, स्वविकास, स्वयं मूल्यांकन, आत्म प्रशंसा, आत्म आलोचना, आत्म संतोष, आत्म जागृति, आत्म परिपूर्णता और स्वसिद्धि में अपने आपको कार्यरत रहना होगा। आप स्वयं अपने श्रेष्ठ मित्र बनते हैं या अपने तीव्र शत्रु बनते हैं, यह आप पर निर्भर करता है। संयमित और स्थिर मन आपका श्रेष्ठ मित्र है। अनियंत्रित और विचलित मन आपका तीव्र शत्रु है। उत्सुकता से सीखने वाले अपनी बुद्धि की सहायता से अपने चित्त के प्रभावी प्रभारी होते हैं। मन के मालिक बनें और 'स्व' सुधार के प्रति आगे बढ़ें।

□

पाठ-18.1
स्वाध्याय
(अध्याय-4, श्लोक 28)

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥4.28॥

अर्थः-कुछ (साधक) द्रव्ययज्ञ, तपयज्ञ और योगयज्ञ करने वाले होते हैं और दूसरे कठिन व्रत करने वाले स्वाध्याय और ज्ञान यज्ञ करने वाले योगीजन होते हैं।

भावार्थः-स्वाध्याय अपने आपके प्रति यज्ञ है। जब आप सीखने में श्रेष्ठता के लिए अपने पूरे प्रयास दृढ़संकल्प से लगाते हैं तो वह यज्ञ ही है। आप द्रव्ययज्ञ कर सकते हो और अपनी एकाग्रता, चिंतन, मनन समर्पित कर सकते हो और लोगों को सीखने की प्रक्रिया में सहायक बनते हो तो वह भी यज्ञ है। परन्तु गुणात्मक यज्ञ द्रव्ययज्ञ से उच्चतर है। स्वाध्याय का अर्थ यह भी है कि अपनी शक्तियाँ, कमजोरियाँ, अवसर, भयस्थान त्रुटियाँ, सुधार, आक्रामकता, लक्ष्य का क्रम, कर्तव्य और जिम्मेदारियों के संदर्भ में सोचना। स्वाध्याय सुधार का संसाधन है।

॥ओउम्॥

□□□